अन्नदाता

कृशन चन्दर एम० ए०

क्रम

भूमिका

आज के युग में ज़िन्दगी की नब्ज़ें बहुत तेज़ी से चल रही हैं और समय के तेवर बड़े भयानक ढंग से बदल रहे हैं। जीवन और मृत्यु, विकास और विनाश में इतना थोड़ा अन्तर रह गया है कि हमें नहीं मालूम हम जीवन की ओर जा रहे हैं या मृत्यु की ओर। समस्त मानव जाति एक आतंक का शिकार बनी हुई है और उसके अस्तित्व को इतना बड़ा खतरा है कि 'प्रलय' का कल्पना-चित्र भी फीका पड़ गया है। ऐसी परिस्थितियों में एक लेखक का कर्त्तव्य न तो सौन्दर्य-सृजन करना रह जाता है न अध्यात्मवाद या रहस्यवाद की घिसी-पिटी व्याख्या करना। उसको तो एक सतर्क संतरी की तरह जीवन की सीमाओं पर गश्त करनी पड़ती है, क्षितिज पर उभरने वाली हर छाया पर निगाह रखनी होती है और जन-चेतना को उभारना होता है। ऐसे समय वह लेखनी उठाने के लिए प्रेरणा की प्रतीक्षा नहीं करता और उन लोगों के विरुद्ध विद्रोह करता है जो कलाकार को 'मानसिक ऐयाशी' का साधन-मात्र समझते हैं। इस अवस्था पर पहुंचकर कलाकार एक सिपाही बन जाता है जो अपनी लेखनी या तूलिका को युद्ध का एक अस्त्र मानकर चलता है।

कृष्णचन्द्र निस्संदेह इस अवस्था को पहुंच चुके हैं। वे आज हर उस मोर्चे पर लड़ते नज़र आते हैं जहां मानवता के भविष्य का फैसला करने के लिए जंग जारी है। वे इस अवस्था को स्वयं या स्वेच्छा से नहीं पहुंचे हैं। यदि कुछ आत्माएं केवल प्रेम करने और सौन्दर्य की उपासना करने के ध्येय से इस धरती पर भेजी जाती हैं तो निश्चय ही कृष्णचन्द्र की आत्मा भी उनमें से एक है। साहित्य में इतने बड़े प्रेमी और तीक्ष्ण सौन्दर्य-भावना रखने वाले कलाकार गिनती के पैदा हुए

हैं। परन्तु संसार ने उनके साथ न्याय नहीं किया। उनकी भावुक सुन्दर-तम आत्मा को केवल चोट ही पहुंचाई है। कृष्णचन्द्र की कहानी भी उनसे भिन्न नहीं है। पहले वे भी अपने पाठकों को प्रेम और सौन्दर्य के अनुपम उपहार भेंट करते थे, परन्तु उन्होंने देखा "मनुष्य हर उस चीज़ को नष्ट करता है जो सुन्दर है, कोमल है, पवित्र है।" वे जहां भी गए सौन्दर्य की आंख डवडवाई हुई मिली। वे अपने एक पात्र 'कवि' के रूप में "धरती के आंसू चुनने लगे।" वे धरती के आंसू चुनते रहे परन्तु आंसुओं का अन्त न हुआ। फिर सहसा वंगाल में अकाल पड़ा। मनुष्य ही नहीं उनकी सभ्यता, उनकी इन्सानियत, यहां तक कि उनकी आत्मा भी चावल के एक-एक दाने के लिए विक गई। रोते-रोते आंसू भी खत्म हो गए और रह गई गड्ढों में धंसी हुई सूखी पथराई हुई आंखें। यह थी मानव-जीवन की नंगी वर्वर सच्चाई। कृष्णचन्द्र ने अनुभव किया कि केवल धरती के आंसू चुनना मानव-जाति के साथ उतनी ही बड़ी ग़द्दारी है जितनी कभी नीरो ने बांसुरी वजाकर की थी। वे ग़द्दारी नहीं करेंगे। वे आंसू नहीं चुनेंगे। वे स्वयं रोकर दूसरों को नहीं रुलाएंगे। वे उस पाशविक शक्ति के विरुद्ध लड़ेंगे जो मानव की आंखों में आंसू लाती है। और अव कृष्णचन्द्र सचमुच एक सिपाही वन गए हैं। उन्हें इस वात का गर्व है कि अव इनकी कहानी वासना को उत्तेजित करने वाली 'कामवटी' नहीं है।

परन्तु कुछ लोगों को इस वात से वड़ा धक्का पहुंचा है। वे प्रार्थना करते हैं कि भगवान् कृष्णचन्द्र को सुवुद्धि दें। उन्हें कृष्णचन्द्र की सूरत इतनी विगड़ी नज़र आती है कि वे देखते हैं और फूट-फूट कर रोते हैं। उन्हें कृष्णचन्द्र की कला में इतना पतन नज़र आता है कि वे अपने को सान्त्वना नहीं दे सकते। यह ठीक है, परन्तु वे कदाचित् इस सत्य को नहीं समझ पाये हैं कि उन्होंने जिस कृष्णचन्द्र को चाहा था वह तो वंगाल के अकाल में मर गया। 'अन्नदाता' कहानी का

वह सितार वजाने वाला जिसके एक हाथ में सितार था और दूसरे में झुंझना, और जो किसी विदेशी दूतावास की सीढ़ियों पर मरा पड़ा था, स्वयं कृष्णचन्द्र ही था जो काश्मीर की रूमानी (Romantic) कहानियां लिखा करता था। अब जो कृष्णचन्द्र कहानियां लिख रहा है वह निश्चय ही पुराने कृष्णचन्द्र से भिन्न हैं। अब उसका दृष्टिकोण पूर्णतया वदल गया है और यह स्वाभाविक है कि उसके पुराने पाठक उसे वदला हुआ पाएं।

इस संग्रह में 'अन्नदाता' को छोड़कर शेष कहानियां कृष्णचन्द्रजी की नवीनतम रचनाएं हैं। इससे पूर्व इनकी कहानियों के जितने संग्रह निकले हैं उनका एक वड़ा दोष यह है कि कहानियों का चुनाव करते समय इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं रखा गया कि उनकी पुरानी अर्थात् रूमानी कहानियों को नई अर्थात् क्रांतिकारी कहानियों के साथ गडमड न किया जाए। इस दोष के कारण हिन्दी के पाठक कृष्णचन्द्र की कला के क्रमिक विकास का भली-भांति अध्ययन नहीं कर सकते।

यह संग्रह इस दोष से पूर्णतया रहित ही नहीं है वल्कि यह विशेषता रखता है कि उसमें कृष्ण जी की नवीनतम रचनाओं के साथ एक पुरानी कहानी 'अन्नदाता' भी शामिल की गई है। 'अन्नदाता' का कृष्णचन्द्र के कथा-साहित्य में वड़ा महत्त्व है। इस युग की एक श्रेष्ठ रचना होने के अतिरिक्त यह कहानी कृष्णचन्द्र की कला और उनकी विचार-धारा में होने वाले परिवर्तन की पृष्ठ-भूमि पेश करती है। इस कहानी के अध्ययन से हमको स्पष्टरूप से पता चल जाता है कि वह कौन-सा भीषण आघात और कौन-सी असह्य वेदना थी जिसने कृष्णचन्द्र को प्रेम और सौंदर्य की कहानियां लिखने की ओर से उदासीन और विमुख कर दिया। इस कहानी में वंगाल के अकाल के करुण चित्र ही नहीं हैं, इसमें एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक और राजनैतिक विश्लेषण किया गया है। कृष्णचन्द्र ने वंगाल के अका

कोणों से देखा है। पहले भाग में एक विदेशी राजदूत अपनी सरकार को अकाल के सम्बन्ध में रिपोर्ट भेजता है और प्रतिदिन लोगों को मरते देखकर और लन्दन के अखवारों में खबरें पढ़ने के वाद भी "विश्वास से नहीं कह सकता कि बंगाल में अकाल है या नहीं।" वह पीड़ितों की सहायता करने से पहले 'डिप्लोमैटिक पोज़ीशन' मालूम करना आवश्यक समझता है। और बंगाल के लोग मरते रहते हैं परन्तु उसे डिप्लोमैटिक पोज़ीशन ठीक-ठीक मालूम नहीं होती। हां, बंगाल की वेटियों को आधे-आधे डालर में विकते देखकर उसे केवल यही अफसोस होता है कि उसके पूर्वजों ने अफ्रीका से पच्चीस-पच्चीस डालर में हब्शी खरीदकर कितनी भारी भूल की थी। यदि वे भारत आ जाते तो उनका कितना धन व्यय हो जाने से बच जाता! वह अपनी सरकार को लिखता है कि आधे डालर फी आदमी के हिसाव से तो हम भारत की सारी आवादी को केवल २० करोड़ डालर में खरीद सकते हैं। भारतीयों के प्रति उनकी सहानुभूति और मानवता की ठेकेदारी के सारे दावे यहां आकर खत्म हो जाते हैं। विदेशियों और पूंजीवादियों की शोषक और अमानुषिक मनोवृत्ति का इससे अधिक सफल चित्र और क्या हो सकता है?

'अन्नदाता' के दूसरे भाग में कृष्णचन्द्र ने देशी उच्चवर्ग के कृत्रिम जन-प्रेम और खोखले चरित्र का प्रदर्शन किया है। एक सम्पन्न बंगाली घराने का नवयुवक पीड़ितों के दुःख को देखकर उनकी सहायता करने का संकल्प करता है लेकिन इससे पहले कि वह कुछ करे उसे अखबारों में अपना नाम और अपना फोटो छपा हुआ दिखाई देने लगता है। वह बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाता है, सारे देश का, गांव-गांव जाकर, दौरा करना चाहता है; परन्तु जब उसकी प्रेमिका आती है तो देश-सेवा का एक ही मार्ग रह जाता है—भूखों की सहायता के लिए एक डान्स का आयोजन करना। और डान्स होता है; शरावें पी जाती हैं और हॉल की बत्तियां बुझ जाती हैं और अंधेरे और नशे और औरत के होंटों में सब कुछ

घुल जाता है, खो जाता है, मर जाता है।

तीसरे भाग में पहले दो भागों की तरह व्यंग की बिजलियां नहीं कौंदतीं बल्कि करुणा का सागर उमड़ता है। इस भाग में कृष्णचन्द्र ने एक सितार बजाने वाले ही की ट्रेजिडी पेश नहीं की बल्कि हमारी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के दुष्परिणामों के अतिरिक्त धर्म और संस्कृति की नींवों के खोखलेपन को दिखाया है। इस भाग में कृष्णचन्द्र के विश्लेषण के सब सूत्र आकर मिलते हैं और इस सत्य को उजागर करते हैं कि मानव-समाज की व्यवस्था एक नये आधार पर करनी होगी और यह आधार चावल का दाना होगा—हां, चावल का दाना। क्योंकि इस दाने के न मिलने से कुछ भी जीवित नहीं रहता, सब कुछ मर जाता है—आदमी का धर्म, उसकी सभ्यता, संस्कृति, मानवीय सम्बन्ध और सामाजिक आदर्श। इन सब चीज़ों को जीवित रखने के लिए संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए चावल के दाने का प्रबंध करना होगा।

इस परिणाम पर पहुंचना कृष्णचन्द्र के कथा-साहित्य के लिए एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। जहां उन्होंने साम्यवाद में मानव-समाज के नव-निर्माण का मूल मंत्र पाया वहां उन्होंने अनुभव किया कि जो लेखक राजनैतिक और आर्थिक घटनाओं की ओर से उदासीन रहेगा वह 'अन्नदाता' के सितार बजाने वाले की तरह कुत्ते की मौत मर जाएगा। स्वयं जीवित रहने के लिए उसे हर उस शक्ति का मुकाबला करना होगा जो मनुष्य की खुशी का गला घोंटती है। इस सच्चाई का अनुभव अन्य लेखकों ने भी किया है परन्तु उनमें और कृष्णचन्द्र में अन्तर यह है कि वे अपने साहित्य को इस अनुभूति के सांचे में न ढाल सके और कृष्ण जी पूर्णतया सफल हुए। 'अन्नदाता' के बाद उन्होंने नौ-सेना के रेटिंगों (Ratings) के विद्रोह पर 'तीन गुंडे' लिखी। देश के बटवारे के बाद हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जो मार-काट हुई उसपर सबसे अधिक और भावपूर्ण कहानियां इन्हीं ने लिखीं।

आज़ादी के बाद देशी सरकार की स्थापना हुई, पर इन्होंने अनुभव किया कि यह सरकार जनता की आकांक्षाओं और आशाओं को पूरा नहीं कर सकती। यह जनता का राज्य नहीं है।

१९४६ के बाद की कहानियों में इसी विचार-धारा का पता मिलता है। 'महालक्ष्मी का पुल' भी इसी तरह की एक कहानी है। कृष्णचन्द्र ने इस कहानी में बम्बई के मजदूरों और निचले वर्ग के लोगों के जीवन की झांकियां दी हैं जिनका जीवन शोषण और अत्याचार के हाथों मौत से बदतर हो गया है। कहानी बड़े सुन्दर और अनोखे ढंग से कही गई है। भला मकानों के छज्जों और तारों पर सूखने के लिए डाली हुई धोतियों को लटकते हुए किसने नहीं देखा? यह मैली फटी-पुरानी या नई और रंगीन धोतियां हमें आकर्षित भी नहीं करतीं। परन्तु कृष्णचन्द्र ने इनकी सहायता से कहानियां कही हैं। उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति से इन धोतियों के पहनने वालों के जीवन की विभीषिकाओं को पेश किया है। इस चीज़ ने टैकनीक के लिहाज़ से इस कहानी में एक विशेष खूबी पैदा कर दी है।

'ब्रह्मपुत्र' भी बंगाल की कहानी है। परन्तु इस कहानी के बंगाल में और 'अन्नदाता' के बंगाल में ज़मीन-आसमान का फर्क नजर आता है। इस कहानी में भी कलकत्ते की सड़कों पर लाशें बिखरी दिखाई गई हैं, परन्तु इस बार ये लाशें उन भूखों की नहीं हैं जो चुपचाप मर गए। ये लाशें बंगाल की उन बेटियों की हैं जो अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा में गोलियों का निशाना बनीं। इस बार कलकत्ते के वातावरण में उदासी और मुर्दनी नहीं बल्कि 'गुस्से की गूंज' सुनाई देती है। कहानी में बंगाली लड़कियों की चरित्र-रेखाएं बड़ी कोमलता से खींची गई हैं। कहानी का वातावरण बड़ा गम्भीर है। परन्तु कृष्णचन्द्र ने स्त्रियों की स्वाभाविक प्रफुल्लता और उनके विनोदपूर्ण स्वभाव को भी पूरी तरह प्रदर्शित किया है। कहानी के सब पात्र जीवित हैं। कहानी में फ़ाइरिंग का वर्णन बड़ा

सनसनीपूर्ण है । परन्तु जो चीज़ इस कहानी को बहुत ऊंचा उठाती है वह बूढ़े चीनी का चरित्र है जो अपनी ही धुन में कहता है "यह सब उसी च्यांग का किया हुआ है । यह च्यांग हर जगह मौजूद है । जब तक इन सब च्यांगों का अन्त नहीं होगा···" और यहां कृष्णचन्द्र की आवाज़ में राजनीति के पंडितों जैसा गाम्भीर्य पैदा हो जाता है। कहानी एक अन्तर्राष्ट्रीय रंग पकड़ लेती है ।

'मैं इन्तज़ार करूंगा' और 'बारूद और चेरी के फूल' बिल्कुल ही नये रंग की कहानियां हैं । इनमें कृष्णचन्द्र ने विदेशी पात्र पेश किए हैं। इन कहानियों को लिखकर कृष्णचन्द्र ने निस्सन्देह अन्तर्राष्ट्रीय लेखक का दर्जा हासिल कर लिया है । उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि एक कलाकार अपनी कल्पना-शक्ति से समय ही नहीं बल्कि स्थान की पाबंदियों को भी तोड़ सकता है । 'मैं इन्तज़ार करूंगा' एक चीनी लड़की की कहानी है जो अपने बाप के साथ बम्बई में कागज़ के फूल बेचती है, और बाद में चीन जाकर कोरिया की लड़ाई में अमरीकनों द्वारा मार दी जाती है। 'बारूद और चेरी के फूल' कोरिया-युद्ध से सम्बन्धित कहानी है। इन कहानियों में हमको कृष्णचन्द्र की कला का एक नया रूप दिखाई देता है । कृष्णचन्द्र कलकत्ते के साम्यवादी आंदोलन और कोरिया-युद्ध में एक रिश्ता देखते हैं । इसलिए कोरिया में लड़ने वाले नर-नारी उनके उतने ही आत्मीय हैं जितने भारत के नर-नारी। परन्तु इन कहानियों की विशेषता इस बात में है कि ये सफल और कलापूर्ण हैं । इनके पात्र सजीव और सच्चे हैं । 'मैं इन्तज़ार करूंगा' में तो कृष्णचन्द्र ने कहानी का ताना-बाना बड़े अद्भुत परन्तु स्वाभाविक ढंग से पूरा है । अपनी कहानी को बम्बई के बाज़ार में शुरू करके और एक चीनी लड़की और एक हिन्दुस्तान के युवक को फूल बेचने वालों के रूप में एक दूसरे के सम्पर्क में लाकर कृष्णचन्द्र ने अपनी कहानी को अस्वाभाविक होने से बचा लिया है । चीन की साम्यवादी व्यवस्था को भारत की आर्थिक व्यवस्था के मुकाबले में उत्तम सिद्ध करने के लिए भी कृष्णचन्द्र ने बड़े

कलापूर्ण ढंग से काम लिया है। चीनी लड़की चीन पहुंचकर पत्रों द्वारा बताती है कि वह अपने गांव में पहुंचकर मास्टरनी बन गई है और उसे अपने पिता की खोई हुई ज़मीन मिल गई है। इधर भारतीय फूल बेचने वाला जेल में पहुंच जाता है क्योंकि महंगाई के कारण लोगों ने कागज़ के फूल खरीदने कम कर दिए और वह पुलिस वाले को सड़क पर खड़े होने के लिए रिश्वत न दे सका, उसने चालान कर दिया। इसी कारण यह कहानी उद्देश्य और कला दोनों की कसौटी पर पूरी उतरती है।

'बारूद और चेरी के फूल' एक कोरियन युवती की कहानी है। कृष्णचन्द्र ने इसमें काफी हद तक कोरिया का वातावरण पैदा किया है और उस ज्वालामुखी जैसी प्रचंड भावना को कहानी में भर दिया है जो कोरियनों के दिल में धधक रही है।

इस प्रकार ये सब कहानियां कृष्णचन्द्र की बहुमुखी कला और प्रतिभा की प्रतीक हैं। ये कहानियां बहुत हद तक उन आशंकाओं को दूर करती हैं जो अनेकों समालोचकों ने उस समय प्रकट की थी जब कृष्णचन्द्र ने इस नये रंग को अपनाया था। ये कहानियां साबित करती हैं कि कृष्णचन्द्र रूमानी कहानियों की तरह क्रांतिकारी कहानियां भी सफलता से लिख सकते हैं।

—रेवतीसरन शर्मा

: १ :

अन्नदाता

"तेरी दुनिया में मैं महकूमो-मजबूर"

—इक़बाल

पहला भाग : वह आदमी जिसकी आत्मा में कांटा है ।

दूसरा भाग : वह आदमी जो मर चुका है ।

तीसरा भाग : वह आदमी जो जीवित है ।

पहला भाग : वह आदमी जिसकी आत्मा में कांटा है

(एक विदेशी राजदूत के पत्र जो उसने अपने वड़े अफसर को कलकत्ते से लिखे)

मूनशाइन विल्ला,
क्लाइव स्ट्रीट,
८ अगस्त, १९४३

श्रीमान् जी,

कलकत्ता भारत का सवसे वड़ा शहर है। हावड़ा पुल भारत का सवसे विचित्र पुल है। बंगाली जाति भारत की सवसे सुवोध जाति है। कलकत्ता विश्वविद्यालय भारत का सवसे वड़ा विश्वविद्यालय है। कलकत्ते का 'सोनागाछी' भारत में वेश्याओं का सवसे वड़ा वाजार है। कलकत्ते का सुन्दरवन चीतों की सवसे वड़ी शिकारगाह है। कलकत्ता जूट का सवसे वड़ा केन्द्र है। कलकत्ते की सवसे वढ़िया मिठाई का नाम 'रस-गुल्ला' है। कहते हैं इसका आविष्कार एक वेश्या ने किया था, लेकिन दुर्भाग्यवश वह इसे पेटेंट न करा सकी, क्योंकि उन दिनों भारत में ऐसा कोई नियम नहीं था। इसीलिए वह वेश्या अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भीख मांगते मरी। एक अलग पार्सल में श्रीमान् मान्यवर के चखने के लिए दो सौ 'रसगुल्ले' भेज रहा हूं। यदि इन्हें क़ीमे के साथ खाया जाए तो वहुत मज़ा देते हैं। मैंने स्वयं इसका तजुर्वा किया है।

मैं हूं, श्रीमान् जी का तुच्छ सेवक,
एफ० वी० पटाखा
कलकत्ता-स्थित राजदूत सांडूघास देश

क्लाइव स्ट्रीट,
६ अगस्त

श्रीमान् जी,

श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी ने मुझे सपेरे की बीन के लिए कहा था। आज शाम को बाज़ार में मुझे एक सपेरा मिल गया। पच्चीस डालर देकर मैंने एक बहुत सुन्दर बीन खरीद ली। यह बीन स्पञ्ज की तरह हल्की और कोमल है। यह एक भारतीय फल से, जिसे 'लौकी' कहते हैं, तैयार की जाती है। यह बीन बिल्कुल हाथ की बनी हुई है और इसे तैयार करते समय किसी मशीन से काम नहीं लिया गया। मैंने इस बीन पर पालिश कराया है और उसे सागवान के एक सुन्दर बक्स में बन्द करके श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी इडिथ के लिए उपहार-स्वरूप भेज रहा हूं।

मैं हूं, श्रीमान् का सेवक,
एफ० बी० पटाखा

१० अगस्त।

कलकत्ते में हमारे देश की तरह राशनिंग नहीं है। खाद्य के सम्बन्ध में हर व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह बाज़ार से जितना अनाज चाहे खरीद ले। कल टिल्ली देश के राजदूत ने मुझे खाने पर निमंत्रित किया। छब्बीस प्रकार के गोश्त के सालन थे। सब्ज़ियों और मीठी चीज़ों के लिए दो दर्जन कोर्स तैयार किए गए थे। शराब बहुत ही बढ़िया थी। हमारे यहां, जैसा कि श्रीमान् जी अच्छी तरह जानते हैं, प्याज़ तक की राशनिंग है। इस नाते कलकत्ते के निवासी बहुत भाग्यशाली हैं। खाने पर एक भारतीय इंजीनियर भी निमन्त्रित था। यह इंजीनियर हमारे देश का शिक्षित है। बातों-बातों में उसने कहा कि कलकत्ते में अकाल पड़ा हुआ है। इस पर टिल्ली का राजदूत कहकहा लगाकर हंसने लगा और मुझे

भी उस हंसी में शामिल होना पड़ा। वास्तव में ये पढ़े-लिखे भारतीय भी बड़े मूर्ख होते हैं। पुस्तकों की शिक्षा से हटकर इन्हें अपने देश की अवस्था का कुछ ज्ञान नहीं। भारत की दो-तिहाई आबादी रात-दिन अनाज और बच्चे उत्पन्न करने में लगी रहती है। इसलिए यहां अनाज और बच्चों की कभी कमी नहीं होने पाती, बल्कि युद्ध से पूर्व तो बहुत-सा अनाज दिसावर को जाता था और बच्चे कुली बनाकर दक्षिणी अफ्रीका भेज दिए जाते थे। अब कुछ समय से कुलियों को बाहर भेजना बन्द कर दिया गया है और भारत के प्रान्तों को 'होम रूल' दे दिया गया है। मुझे तो यह भारतीय इंजीनियर कोई ऐजीटेटर प्रकार का खतरनाक व्यक्ति मालूम होता था। उसके चले जाने के बाद मैंने मोसियो ज़ां-ज़ां तुरेप, दिल्ली के राजदूत, से उसका ज़िक्र किया तो मोसियो ज़ां-ज़ां तुरेप ने बड़े सोच-विचार के बाद यह राय दी कि भारत अपने देश पर शासन करने की बिल्कुल योग्यता नहीं रखता। चूंकि मोसियो ज़ां-ज़ां तुरेप के राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक विशेष स्थान प्राप्त है, इसलिए मैं उनकी राय को ठीक समझता हूं।

मैं हूं, श्रीमान् का सेवक,
एफ. बी. पटाखा

११ अगस्त।

आज प्रातः बोलपुर से वापस आया हूं, वहां डाक्टर टैगोर का 'शांतिनिकेतन' देखा। कहने को तो यह एक विश्वविद्यालय है, लेकिन शिक्षा की हालत यह है कि विद्यार्थियों के बैठने के लिए एक बैंच भी नहीं। शिक्षक और विद्यार्थी सभी वृक्षों के नीचे आलती-पालती मारे बैठे रहते हैं और भगवान जाने कुछ पढ़ते भी हैं या यों ही ऊंघते रहते हैं। मैं वहां से शीघ्र ही चला आया क्योंकि धूप बहुत तेज़ थी और ऊपर वृक्षों की शाखाओं में चिड़ियां शोर मचा रह थीं।

एफ. बी. पी.

१२ अगस्त ।

आज चीनी राजदूत के यहां लंच पर फिर किसीने कहा कि कलकत्ते में घोर अकाल पड़ा हुआ है, लेकिन विश्वास के साथ कोई कुछ न कह सका कि वास्तविकता क्या है । हम सब लोग बंगाल सरकार की घोषणा की प्रतीक्षा कर रहे हैं। घोषणा होते ही श्रीमान् जी को आगे का हाल लिखूंगा । बैग में श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी इडिथ के लिए एक जूती भेज रहा हूं । यह जूती सब्ज़ रंग के सांप की जिल्द से बनाई गई है । सब्ज़ रंग के सांप बर्मा में बहुत होते हैं । आशा है कि जब बर्मा पुनः अंग्रेजी सरकार के अधीन हो जाएगा तो इन जूतों का व्यापार बहुत बढ़ सकेगा ।

मैं हूं श्रीमान् का इत्यादि,
एफ. बी. पटाखा

१३ अगस्त ।

आज हमारे दूत-भवन के बाहर दो औरतों की लाशें पाई गईं। हड्डियों का ढांचा मालूम होती थीं । शायद 'सूखिया' के रोग में ग्रस्त थीं । इधर बंगाल में, और शायद सारे भारत में, 'सूखिया' रोग फैला हुआ है । इस रोग में मनुष्य घुलता चला जाता है और अन्त में सूखकर हड्डियों का ढांचा होकर मर जाता है । यह बड़ा भयानक रोग है, लेकिन अभी तक इसकी कोई उचित औषधि नहीं बनी । कोनीन पर्याप्त मात्रा में मुफ्त बांटी जा रही है लेकिन कोनीन, मैगनेशिया या किसी अन्य पश्चिमी औषधि से इस रोग में कोई फर्क नहीं पड़ता । वास्तव में एशियाई रोग पश्चिमी रोगों से बहुत भिन्न हैं । यही बात पूर्ण रूप से इस बात को भी सिद्ध करती है कि एशियाई और पश्चिमी लोग एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं ।

श्रीमान् मान्यवर की धर्मपत्नी के बासठवें जन्मोत्सव पर मैं बुद्ध की

एक मरमर की मूर्ति भेज रहा हूं। इसे मैंने पांच सौ डालर में खरीदा है। यह महाराजा विन्दुसार के युग की है और एक पवित्र मन्दिर की शोभा बढ़ा रही थी। श्रीमान् मान्यवर की धर्मपत्नी के मुलाकातियों के कमरे में खूब सजेगी।

दोवारा निवेदन है कि इस दूत-भवन के वाहर पड़ी हुई लाशों में एक वच्चा भी था, जो अपनी मां के स्तनों से दूध चूसने की असफल चेष्टा कर रहा था। मैंने उसे अस्पताल भिजवा दिया है।

श्रीमान् मान्यवर का सेवक,
एफ़. वी. पटाखा

१४ अगस्त।

डाक्टर ने वच्चे को अस्पताल में दाखिल करने से इन्कार कर दिया है। वच्चा अभी तक दूत-भवन में है। समझ में नहीं आता, क्या करूं ? श्रीमान् मान्यवर के आदेश की प्रतीक्षा है। टिल्ली के राजदूत ने परामर्श दिया है कि इस वच्चे को जहां से पाया था वहीं छोड़ दूं, लेकिन मैंने यह उचित नहीं समझा कि अपने राज्य के प्रधान से पूछे विना ऐसी कोई वात करूं जिसके राजनैतिक परिणाम न जाने कितने हानिकारक हों।

एफ़. वी. पटाखा

१६ अगस्त।

आज इस भवन के वाहर फिर लाशें पाई गईं। ये सव लोग उसी रोग में ग्रस्त मालूम होते थे जिसका वर्णन मैं अपने पिछले पत्रों में कर चुका हूं। मैंने वच्चे को चुपके से उन्हीं लाशों में रख दिया और पुलिस को टेलीफोन कर दिया कि वह उन्हें राजभवन की सीढ़ियों से उठाने का प्रवन्ध करे। आशा है, आज शाम तक सव लाशें उठ जाएंगी।

एफ़. वी. पटाखा

१७ अगस्त ।

कलकत्ते के अंग्रेज़ी समाचार-पत्र 'स्टेट्समैन' ने अपने मुख-पृष्ठ पर यह समाचार प्रकाशित किया है कि कलकत्ते में घोर अकाल पड़ा हुआ है। यह समाचार-पत्र कुछ दिनों से अकालग्रस्त लोगों के चित्र भी प्रकाशित कर रहा है। अभी तक विश्वास से यह नहीं कहा जा सकता कि ये फोटो असली हैं या नकली। देखने में ये फोटो सूखिया के रोगियों के मालूम होते हैं, लेकिन समस्त विदेशी राजदूत अपनी राय को 'सुरक्षित' रख रहे हैं।

एफ. बी. पी.

२० अगस्त ।

सूखिया के रोगियों को अब अस्पताल में दाखिल करने की आज्ञा मिल गई है। कहा जाता है कि केवल कलकत्ते में प्रतिदिन दो-ढाई सौ आदमी इस रोग का शिकार होते हैं और अब यह रोग एक वबा का रूप धारण कर गया है। डाक्टर लोग बहुत परेशान हैं क्योंकि कोनीन खिलाने से कोई फायदा नहीं होता। रोग में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। हाज़मे का मिक्सचर, मैगनेशिया मिक्सचर और टिक्चरायडीन अर्थात् पूरा ब्रिटिश फार्माकोपिया बेकार है। कुछ रोगियों का रक्त लेकर पश्चिमी वैज्ञानिकों के पास अन्वेषणार्थ भेजा जा रहा है और संभव है कि किसी बहुत बड़े पश्चिमी ऐक्सपर्ट की सेवाएं भी प्राप्त की जाएं। एक रॉयल कमीशन बिठा दिया जाए तो चार-पांच वर्ष में अच्छी प्रकार छानबीन करके इस बात के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट दे। अभिप्राय यह है कि इन रोगियों को बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न किया जा रहा है। आगे, जैसा कि बाइबल में लिखा है, भगवान मालिक है। यद्यपि बंगाली समाचारपत्रों में बड़े ज़ोर-शोर के साथ घोषणा की गई है कि सारे बंगाल में अकाल पड़ा हुआ है और हज़ारों व्यक्ति हर हफ्ते अनाज

की कमी के कारण मर जाते हैं, लेकिन हमारी दासी (जो स्वयं बंगालन है) का ख्याल है कि ये समाचारपत्रों वाले झूठ वकते हैं। जब वह बाज़ार में चीज़ें खरीदने जाती है तो उसे हर चीज़ मिल जाती है। दाम अवश्य बढ़ गए हैं, लेकिन यह मंहगाई तो युद्ध के कारण ही है।

एफ. बी. पी.

२८ अगस्त।

कल एक विचित्र प्रकार की घटना हुई। मैंने न्यूमार्केट से अपनी सबसे छोटी बहिन के लिए कुछ खिलौने खरीदे। उनमें एक चीनी की गुड़िया बहुत सुन्दर थी और मारिया को बहुत पसन्द थी। मैंने डेढ़ डालर देकर वह गुड़िया खरीद ली और मारिया को उंगली से लगाए बाहर आ गया। कार में बैठने को था कि एक अधेड़ आयु की बंगाली औरत ने मेरा कोट पकड़कर मुझे बंगाली भाषा में कुछ कहा। मैंने उससे अपना कोट छुड़ा लिया और कार में बैठकर अपने बंगाली शोफर से पूछा 'यह क्या चाहती है?'

ड्राइवर बंगाली औरत से बात करने लगा। उस औरत ने उत्तर देते हुए अपनी बेटी की ओर संकेत किया जिसे वह अपने कंधे से लगाए खड़ी थी। बड़ी-बड़ी मोटी आंखों वाली पीली-सी बच्ची बिल्कुल चीनी की गुड़िया मालूम होती थी और मारिया की ओर घूर-घूरकर देख रही थी।

फिर बंगाली औरत ने तेज़ी से कुछ कहा। बंगाली ड्राइवर ने उसी तेज़ी से उत्तर दिया।

'क्या कहती है यह?' मैंने पूछा।

ड्राइवर ने उस औरत की हथेली पर कुछ पैसे रखे और कार आगे बढ़ाई। कार चलाते-चलाते बोला, 'श्रीमान! यह अपनी बच्ची बेचना चाहती थी, डेढ़ रुपये में।'

डेढ़ रुपये में, याने आधे डालर में ! मैंने हैरान होकर पूछा, 'अरे, आधे डालर में तो चीनी की गुड़िया भी नहीं आती !'

'आजकल आधे डालर में, वल्कि इससे भी कम में, एक वंगाली वच्ची मिल सकती है, साहव !'

मैं आश्चर्य से अपने ड्राइवर की ओर देखता रह गया। उस समय मुझे अपने देश के इतिहास का वह युग याद आया जव हमारे पूर्वज अफ्रीका से हव्शियों को ज़वर्दस्ती जहाज़ में लादकर अपने देश में ले आते थे और मंडियों में दासों का व्यापार करते थे। उन दिनों एक साधारण से साधारण हव्शी भी पच्चीस-तीस डालर से कम में न विकता था। आह ! कितनी गलती हुई। हमारे पूर्वज यदि अफ्रीका की वजाय भारत का रुख करते तो वहुत सस्ते दामों दास प्राप्त कर सकते थे। हव्शियों की अपेक्षा यदि भारतीयों का व्यापार करते तो लाखों डालर की वचत हो जाती। एक भारतीय लड़की आधे डालर में ! और भारत की सारी आवादी चालीस करोड़ है। अर्थात् वीस करोड़ डालर में हम पूरे भारत के लोगों को खरीद सकते हैं। ज़रा विचार तो कीजिए कि वीस करोड़ होते ही कितने हैं ! इससे अधिक रकम तो हमारे देश में एक विश्वविद्यालय स्थापित करने में खर्च हो जाती है। यदि श्रीमान् मान्यवर की मंझली वेटी को यह पसन्द हो तो मैं एक दर्जन वंगाली लड़कियां हवाई जहाज़ द्वारा पार्सल कर दूं। मुझे शोफर ने वताया है कि आज-कल 'सोनागाची' जहां कलकत्ते की वेश्याएं रहती हैं इस प्रकार के कारो-वार का अड्डा है। सैकड़ों लड़कियां दिन-रात वेची जा रही हैं। लड़कियों के माता-पिता वेचते हैं और वेश्यायें खरीदती हैं। आम भाव सवा रुपया है, लेकिन यदि वच्ची मुंह-माथे की अच्छी हो तो चार-पांच वल्कि दस रुपये भी मिल जाते हैं। चावल आजकल वाज़ार में साढ़े सत्तर रुपये मन मिलता है, इस हिसाव से यदि एक कुटुम्व अपनी दो वच्चियां भी वेच दे तो कम से कम आठ-दस दिन और जीवन चलाया जा सकता है। और प्रायः वंगाली कुटुम्वों में लड़कियों की संख्या दो से अधिक होती है।

कल मेयर आफ कलकत्ता ने शाम के खाने पर निमन्त्रित किया है, वहां अवश्य ही बहुत दिलचस्प बातें होंगी ।

एफ. बी. पी.

२९ अगस्त ।

मेयर आफ़ कलकत्ता का विचार है कि बंगाल में घोर अकाल है और हालत अत्यन्त खतरनाक है। उसने मुझसे अपील की कि मैं अपनी सरकार को बंगाल की सहायता के लिए तैयार करूं। मैंने उसे अपनी सरकार की सहानुभूति का विश्वास दिलाया, लेकिन यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह अकाल भारत का आन्तरिक मामला है और हमारी सरकार किसी अन्य देश के मामलों में टांग नहीं अड़ाना चाहती । हम सच्चे जन-तन्त्रवादी हैं और कोई सच्ची जनतन्त्रवादी सरकार किसी की स्वतन्त्रता छीनना नहीं चाहती। प्रत्येक भारतीय को जीने अथवा मरने का पूर्ण अधिकार है । यह एक व्यक्तिगत या अधिक से अधिक एक राष्ट्रीय विषय है और अन्तर्राष्ट्रीयता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं । इस अवसर पर मोसियों ज़ां ज़ां तुरेप़ भी बहस में शामिल हो गए और कहने लगे—जब आपकी ऐसम्बली ने बंगाल को Famine Arca कहा ही नहीं तो इस हालत में आप अन्य सरकारों से कैसे सहायता की मांग कर सकते हैं ? इस पर मेयर आफ़ कलकत्ता मौन हो गए और रसगुल्ले खाने लगे ।

एफ. बी. पी.

३० अगस्त ।

मिस्टर एमरी ने जो भारत के अंग्रेज़ मंत्री हैं, हाउस आफ़ कामंज़ में एक बयान देते हुए कहा है कि 'भारत में आबादी के मुकाबले में अनाज की स्थिति बहुत खराब है ।' भारत की आबादी में डेढ़ सौ गुना

वृद्धि हुई है, हालांकि अनाज की उपज बहुत कम है। इस पर मज़ा यह कि भारतनिवासी बहुत खाते हैं।

श्रीमान् जी, यह तो मैंने भी आज़माया है कि भारतनिवासी दिन में दो बार, बल्कि अक्सर हालतों में केवल एक बार, खाना खाते हैं; लेकिन इतना खाते हैं कि हम पश्चिमी लोग दिन में पांच बार भी इतना नहीं खा सकते। मोसियो जां-जां तुरेप का ख्याल है कि बंगाल में अधिक मृत्यु होने का सबसे बड़ा कारण यहां के लोगों का पेटूपन है। ये लोग इतना खाते हैं कि इनका पेट फट जाता है और इनकी मृत्यु हो जाती है। इसीलिए कहा जाता है कि भारतीय क़भी मुंहफट नहीं होता, लेकिन पेटफट अवश्य होता है। लेकिन श्रीमान् जी, मैंने तो जितने भारतीय देखे उन सबको मुंहफट, पेटफट, बल्कि प्रायः तिल्लीफट भी पाया। इसके अतिरिक्त यह बात और भी ध्यान देने की है कि भारत के लोगों की और चूहों की उत्पत्ति संसार में सबसे अधिक है और प्रायः इन दोनों में कोई फर्क निकालना बहुत कठिन हो जाता है। वे जितनी जल्दी उत्पन्न होते हैं, उतनी जल्दी मर भी जाते हैं। यदि चूहों को प्लेग होती है तो इनको सूखिया। बल्कि इन्हें तो अक्सर प्लेग और सूखिया दोनों हो जाते हैं। जो हो, जब तक चूहे अपने बिलों में रहें और संसार को परेशान न करें हमें उनकी निजी बातों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं।

खाद्य-विभाग के मंत्री वर्तमान स्थिति की जांच-पड़ताल के लिए पधारे हैं। बंगाली हल्क़ों में यह आशा प्रकट की जा रही है कि माननीय मंत्री को अब यह मालूम हो जाएगा कि बंगाल में सचमुच अकाल पड़ा हुआ है और अधिक मृत्यु होने का कारण बंगालियों की अनारकिस्टाना हरकतें नहीं बल्कि खाद्य-संकट है।

एफ. बी. पी.

२० सितम्बर।

माननीय मंत्री जांच-पड़ताल के बाद वापस देहली चले गए हैं। सुना है वहां श्रीमान् वाइसराय बहादुर से मुलाकात करेंगे और अपने प्रस्ताव उनके सामने रखेंगे।

एफ. बी. पी.

२५ सितम्बर।

लंदन के अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों की सूचना के अनुसार प्रतिदिन कलकत्ते की गलियों, सड़कों और फुट-पाथ पर लोग मर जाते हैं। लेकिन ये सब तो समाचार ही समाचार हैं। सरकारी रूप से इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि बंगाल में अकाल है। सब लोग परेशान हैं। चीनी राजदूत कल मुझ से कह रहा था कि वह बंगाल के अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए एक फंड खोलना चाहता है लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि वह क्या करे और क्या न करे। कोई कहता है कि अकाल है, कोई कहता है नहीं है। मैंने उसे समझाया, मूर्ख न बनो। इस समय तक हमारे पास यही सूचना है कि खाद्य-संकट इसलिए है कि भारतनिवासी बहुत खाते हैं। अब तुम उनकी सहायता के लिए फंड खोलकर उनके पेटूपन को और शह दोगे। यह मूर्खता नहीं तो और क्या है? लेकिन चीनी राजदूत मेरी व्याख्या से असन्तुष्ट मालूम होता था।

एफ. बी. पी.

२८ सितम्बर।

देहली में खाद्य के विषय पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया जा रहा है। आज फिर यहां कई लोग 'सूखिया' से मर

गए। यह सूचना भी मिली है कि भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों ने जनता में अनाज वांटने की जो स्कीम वनाई है, उससे उन्होंने कई लाख का लाभ प्राप्त किया है। इसमें वंगाल की सरकार भी शामिल है।

एफ. वी. पी.

२० अक्तूवर।

कल ग्रांड होटल में 'वंगाल दिवस' मनाया गया। कलकत्ता के योरुपियन भद्र पुरुषों के अतिरिक्त उच्च अधिकारी, शहर के वड़े-वड़े सेठ और महाराजे भी इस दिलचस्प मनोरंजन में सम्मिलित थे। डान्स का प्रबंध विशेष रूप से अच्छा था। मैंने मिसेज़ जूलिएट तुरेप के साथ दो वार डान्स किया (मिसेज तुरेप के मुंह से लहसन की वू आती थी—न जाने क्यों।) मिसेज़ तुरेप से यह मालूम हुआ कि इस समारोह के अवसर पर वंगाल दिवस के सम्वन्ध में नौ लाख रुपया एकत्रित हुआ है। मिसेज़ वार-वार चांद की सुन्दरता और रात की काली कोमलता का वर्णन कर रही थीं और उनके मुंह से लहसन के भपारे छूट रहे थे। जव मुझे उनके साथ दोवारा डान्स करना पड़ा तो मेरा जी चाहता था कि उनके मुंह पर लाईसोल या फ़िनायल छिड़ककर डान्स करूं। लेकिन फिर ख्याल आया कि मिसेज जूलिएट तुरेप मोसियो ज़ां ज़ां तुरेप की पत्नी हैं और मोसियो ज़ां ज़ां तुरेप की सरकार को अंतर्राष्ट्रीय मामलों में ऊंचा स्थान प्राप्त है।

भारतीय महिलाओं में मिस सिनहा से परिचय हुआ। वड़ी सुन्दर है और वहुत ही अच्छा नाचती है।

एफ. वी. पी.

२६ अक्टूबर ।

मिस्टर मुंशी, बम्बई सरकार के एक भूतपूर्व मंत्री, का अनुमान है कि बंगाल में हर हफ्ते एक लाख व्यक्ति अकाल का ग्रास बन रहे हैं, लेकिन यह सरकारी सूचना नहीं थी। दूत-भवन के बाहर आज फिर कुछ लाशें पाई गई। शोफर ने बताया कि यह एक पूरा कुटुम्ब था जो गांव से रोटी की तलाश में कलकत्ता आया था। परसों भी इसी प्रकार मैंने एक गायक की लाश देखी थी। एक हाथ में वह अपनी सितार पकड़े हुए था और दूसरे हाथ में लकड़ी का एक झुंझुना। समझ में नहीं आता इसका क्या मतलब था······बेचारे चूहे, किस प्रकार चुपचाप मर जाते हैं और मुंह से उफ तक नहीं करते। मैंने भारतीयों से अधिक भद्र चूहे संसार में कहीं नहीं देखे। शांति-प्रियता के लिए यदि किसी जाति को नोबल प्राइज़ मिल सकता है तो वह भारतीयों को ही मिल सकता है। अर्थात् लाखों की संख्या में भूखे मर जाते हैं लेकिन जिह्वा पर शिकायत का एक शब्द भी नहीं लाते। केवल ज्योति-हीन आंखों से आकाश की ओर देखते हैं, जैसे कह रहे हों—अन्नदाता! अन्नदाता!! कल रात भर मुझे उस गायक की मौन शिकायत से भरी, प्राणहीन, स्थिर, पथरीली नज़रें परेशान करती रहीं।

एफ. बी. पी.

५ नवम्बर ।

नये श्रीमान् वाइसराय बहादुर तशरीफ लाए हैं। सुना है कि उन्होंने अकाल-ग्रस्त लोगों की सेवा पर सेना को नियत किया है। और जो लोग कलकत्ते के गली-कूचों में मरने के अभ्यस्त हो चुके हैं, उनके लिए आस-पास के गांवों में केन्द्र खोल दिए गए हैं जहां उनके विश्राम के लिए सब कुछ जुटाया जाएगा।

एफ. बी. पी.

१० नवम्बर ।

मोसियो ज़ां ज़ां तुरेप का ख्याल है कि यह भी सम्भव है कि बंगाल में सचमुच अकाल पड़ा हो और सूखिया रोग की सूचनाएं गलत हों। विदेशी राजदूतों में इस रिमार्क से हलचल मच गई। गोविया देश, लोविया देश और मिस्टरसलोवेकिया के राजदूतों का ख्याल है कि मोसियो जां ज़ां तुरेप का यह वाक्य किसी आनेवाले महायुद्ध की भविष्य-वाणी है। योरुप और एशिया के देशों से भागे हुए लोगों में, जो आजकल भारत में रह रहे हैं, वाइसराय की इस स्कीम के सम्बन्ध में कई आशंकायें उत्पन्न हो रही हैं। वे लोग सोच रहे हैं कि यदि बंगाल को सचमुच अकाल-ग्रस्त इलाका सिद्ध कर दिया गया तो उनके अलाउंस का क्या बनेगा ? वे लोग कहां जाएंगे ? मैं श्रीमान् मान्यवर का ध्यान इस राजनैतिक उलझन की ओर दिलाना चाहता हूं जो वाइसराय बहादुर की घोषणा से उत्पन्न हो गई है। शरणार्थियों के अधिकारों की रक्षा के लिए क्या हमें डटकर न लड़ना चाहिए ? पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की क्या मांगें हैं ? स्वतन्त्रता और जनतन्त्र को स्थापित रखने के लिए हमें क्या कदम उठाना चाहिए ? मैं इस सम्बन्ध में श्रीमान् मान्यवर के आदेश की प्रतीक्षा में हूं।

एफ. बी. पी.

२५ नवम्बर।

मोसियो ज़ां ज़ां तुरेप का ख्याल है कि बंगाल में अकाल नहीं है। मोसियो फां फां फिग चीनी राजदूत का ख्याल है कि बंगाल में अकाल है। मैं लज्जित हूं कि श्रीमान् जी ने मुझे जिस काम के लिए कलकत्ते के दूत-भवन में नियुक्त किया था वह कार्य मैं पिछले तीन मास में भी पूरा न कर सका। मेरे पास इस बात की एक भी ऐसी खबर नहीं जिससे मैं विश्वास के साथ कह सकूं कि बंगाल में अकाल है या नहीं है। तीन

मास की दौड़-धूप के बाद भी मुझे यह मालूम न हो सका कि ठीक-ठीक डिपलोमैटिक पोजीशन क्या है। मैं इस प्रश्न का उत्तर देने से विवश हूं, लज्जित हूं, क्षमा चाहता हूं।

और निवेदन है कि श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी को मुझसे और मुझे श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी से प्रेम है, इसलिए यह उचित होगा कि श्रीमान् मान्यवर मुझे कलकत्ते के इस भवन से वापस बुला लें और मेरा विवाह अपनी बेटी—मेरा मतलब है श्रीमान् मान्यवर की मंझली बेटी—से कर दें, और श्रीमान मान्यवर मुझे किसी बड़े दूत-भवन में नियुक्त कर दें। इस कृपा के लिए मैं श्रीमान् मान्यवर का मरते दम तक कृतज्ञ रहूंगा।

इडिथ के लिए एक नीलम की अंगूठी भेज रहा हूं, इसे महाराजा अशोक की बेटी पहना करती थी।

मैं हूं श्रीमान का तुच्छतर सेवक,
एफ. बी. पटाखा,
कलकत्ता स्थित राजदूत, सांड्घास देश।

दूसरा भाग : वह आदमी जो मर चुका है

सुबह नाश्ते पर जब उसने समाचार-पत्र खोला तो बंगाल के अकाल-पीड़ितों के चित्र देखे जो सड़कों पर, वृक्षों के नीचे, गलियों में, खेतों में, बाजारों में, घरों में हजारों की संख्या में मर रहे थे। आमलेट खाते-खाते उसने सोचा कि इन निर्धनों की सहायता किस रूप में की जा सकती है—ये निर्धन जो निराशा की मंज़िल से आगे जा चुके हैं और मृत्यु की ओर लपक रहे हैं। इन्हें जीवन की ओर वापस लाना, जीवन के दुख-दर्द से पुनः परिचित कराना, उनपर दया नहीं उनसे शत्रुता होगी। उसने

जल्दी से समाचार-पत्र का पन्ना उलटा और टोस्ट पर मुरब्बा लगाकर खाने लगा। टोस्ट नरम, गरम और करारा था और मुरब्बे की मिठास और उसकी हल्की-सी खटास ने उसके स्वाद को और भी निखार दिया था—जैसे गाज़े का गुबार औरत की सुन्दरता को निखार देता है। एकाएक उसे स्नेह का ख्याल आया। स्नेह अभी तक नहीं आई थी, हालांकि उसने वायदा किया था कि वह सुबह नाश्ते पर उसके साथ मौजूद होगी। सो रही होगी बेचारी......अब क्या समय होगा? उसने अपनी सोने की घड़ी देखी जो उसकी गोरी कलाई पर, जिस पर काले बालों की एक हल्की-सी कोमल रेखा थी, एक काले फीते से बंधी थी। घड़ी, कमीज़ के बटन, और टाई का पिन—पुरुष यही तीन ज़ेवर पहन सकता है और स्त्रियों को देखिए कि शरीर को ज़ेवरों से ढक लेती हैं। कान के लिए ज़ेवर, पांव के लिए ज़ेवर, कमर के लिए ज़ेवर, नाक के लिए ज़ेवर, सिर के लिए ज़ेवर, गले के लिए ज़ेवर, बाहों के लिए ज़ेवर और पुरुष बेचारे के लिए केवल तीन ज़ेवर। बल्कि दो ही समझिए, क्योंकि टाई का पिन अब फ़ैशन से बाहर होता जा रहा है। न जाने पुरुषों को अधिक ज़ेवर पहनने से क्यों रोका जाता है? यही सोचते-सोचते वह दलिया खाने लगा। दलिए से इलायची की महक उठ रही थी। उसके नथने उसकी सुगन्धि से भर गए और फिर एकाएक उसके नथनों में पिछली रात के इतर की सुगन्धि बस गई—वह इतर जो स्नेह ने अपनी साड़ी, अपने बालों में लगा रखा था। पिछली रात का मनोरम नृत्य उसकी आंखों के सामने घूमता गया। ग्रांड होटल में नृत्य सदैव अच्छा होता है। उसका और स्नेह का जोड़ा कितना अच्छा है! सारे हाल की नज़रें उनपर जमी हुई थीं। वह कानों में सोने के गोल-गोल आवेज़े पहने हुए थी जो उसकी लवों को छुपा रहे थे। ओठों पर यौवन की मुस्कान और मैक्स फैक्टर की लाली का चमत्कार और छातियों पर मोतियों की माला चमकती, दमकती, लचकती, नागिन की तरह सौ बल खाती हुई। 'रम्बा' नृत्य कोई स्नेह से सीखे। उसके शरीर का हचकोले खाना और

रेशमी साड़ी का वहाव जैसे समुद्र की लहरें चांदनी रात में तट से अठखेलियां कर रही हों। लहर आगे आती है, तट को छूकर लौट जाती है। मध्यम सी सरसराहट उत्पन्न होती है और समाप्त हो जाती है। शोर मद्धम होता जाता है। शोर निकट आ जाता है। धीरे-धीरे लहर चांदनी में नहाए हुए तट को चूम रही है। स्नेह के अध-खुले ओठों में दांतों की सफेदी मोतियों की माला की तरह कांपती नज़र आती थी··· एकाएक हाल में विजली बुझ गई और वह और स्नेह ओंठ से ओंठ मिलाए, वदन से वदन लगाए, आंखें वन्द किए, नृत्य के ताल पर नाचते रहे। हाय उन सुरों का मद्धम वहाव, वह रसीला मीठा वहाव, धीरे-धीरे वहता हुआ। मृत्यु की सी पवित्रता, निद्रा और नशा, जैसे शरीर न हो, जैसे आत्मा न हो, जैसे तू न हो, जैसे मैं न हूं, केवल एक चुम्वन, केवल एक गीत हो, एक लहर हो, धीरे-धीरे वहता हुआ······उसने सेव के कत्ले किए और कांटे से उठा-उठाकर खाने लगा। प्याली से चाय उंडेलते हुए उसने सोचा, स्नेह का शरीर कितना सुन्दर है, उसकी आत्मा किसी सुन्दर है, उसकी वुद्धि कितनी खोखली है······उसे वुद्धिमान औरतें विलकुल पसन्द न थीं; जव देखो समाजवाद, साम्राज्यवाद, मार्कसिज़्म पर वहस कर रही हैं। स्वतन्त्रता, स्त्री-शिक्षा, नौकरी—यह नई औरत, औरत नहीं दार्शनिकता की पुस्तक है। भाई ऐसी औरत से मिलने या शादी करने की वजाय तो यह अच्छा है कि आदमी वैठा अरस्तू पढ़ा करे। वेचैन हो उसने एक वार फिर घड़ी पर नज़र डाली। स्नेह अभी तक न आई थी। चर्चिल और स्टालिन और रूज़वैल्ट तेहरान में संसार का नक्शा वदल रहे थे, और वंगाल में लाखों आदमी भूख से मर रहे थे। संसार को एटलांटिक चार्टर दिया जा रहा था और वंगाल में चावल का एक दाना भी न था। उसे भारत की निर्धनता पर इतनी दया आई कि उसकी आंखों में आंसू भर आए। हम निर्धन हैं, वेवस हैं, हमारे घर का वही हाल है जो उर्दू कवि 'मीर' के घर का था जिसका जिक्र उसने चौथी श्रेणी में पढ़ा था और जो हर समय प्रार्थना करता रहता था,

जिसकी दीवारें सीली-सीली और गिरी हुई थीं और जिसकी छत सदैव टपक-टपककर रोती रहती थी। उसने सोचा, भारत भी सदैव रोता रहता है। कभी रोटी नहीं मिलती, कभी कपड़ा नहीं मिलता, कभी वर्षा नहीं होती, कभी रोग फैल जाते हैं। अब बंगाल के बेटों को देखो, हड्डियों के ढांचे, आंखों में अमिट शिथिलता, ओठों पर भिखारियों की आहें! रोटी, चावल का एक दाना। एकाएक चाय का घूंट उसे अपने कण्ठ को काटता हुआ सा लगा और उसने सोचा कि वह अवश्य अपने देशवासियों की सहायता करेगा। वह चन्दा इकट्ठा करेगा। सारे भारत का दौरा करेगा और चिल्ला-चिल्लाकर उसकी आत्मा को झंझोड़-झंझोड़कर जगाएगा। दौरा, जल्से, वालंटियर, चन्दा, अनाज और जीवन की एक लहर देश में इस सिरे से उस सिरे तक फैल जाएगी, बिजली की तरह। एकाएक उसने अपना नाम मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा देखा। देश का हर समाचार-पत्र उसकी सेवाओं की सराहना कर रहा था और इस समाचार-पत्र में भी, जिसे वह अब पढ़ रहा था, उसे अपना चित्र झांकता हुआ नज़र आया, खद्दर के वस्त्र और जवाहर-जैकट और हां वैसी ही सुन्दर मुस्कराहट। हां, बस यह ठीक है, उसने बैरे को आवाज़ दी और उसे एक और आमलेट तैयार करने को कहा। आज से वह अपना जीवन बदल डालेगा। अपने जीवन का हरेक क्षण इन भूखे-नंगे मरते हुए देश-वासियों की सेवा में व्यतीत करेगा। वह अपनी जान भी उनपर न्योछावर कर देगा। एकाएक उसने स्वयं को फांसी की कोठरी में बन्द पाया। उसे फांसी के तख्ते की ओर ले जाया जा रहा था। उसके गले में फांसी का फंदा था। जल्लाद ने चेहरे पर गिलाफ ओढ़ा दिया और उसने उस खुरदरे मोटे गिलाफ के भीतर से चिल्लाकर कहा: मैं मर रहा हूं, अपने भूखे-नंगे देश के लिए। यह सोचकर उसकी आंखों में फिर आंसू भर आए और दो-एक गरम-गरम नमकीन बूंदें चाय की प्याली में भी गिर पड़ीं और उसने रूमाल से अपने आंसू पोंछ डाले। एकाएक एक कार पोर्च में रुकी और मोटर का पट खोलकर स्नेह मुस्कराती हुई

सीढ़ियों पर चढ़ती हुई दरवाज़ा खोलकर भीतर आती हुई, उसे 'हैलो' कहती हुई, उसके गले में बांहें डालकर उसके गालों को फूल की तरह अपने सुगन्धित ओठों से चूमती हुई नज़र आई। बिजली, गरमी, प्रकाश, प्रसन्नता, सब कुछ एक मुस्कान में था और फिर विष ! स्नेह की आंखों में विष था, उसके ओठों में विष था, उसकी कमर के लोच में विष था, उसके लम्बे कद में विष था, उसके केशों में विष था, उसके मद्धम हल्के श्वास के हर बहाव में विष था। वह अजंता का चित्र थी जिसके नैन-नक्श चित्रकार ने विष से उभारे थे।

उसने पूछा 'नाश्ता करोगी ?'

'नहीं, मैं नाश्ता करके आई हूं' फिर स्नेह ने उसकी पलकों पर आंसू छलकते देखे, बोली 'तुम आज उदास क्यों हो ?'

वह बोला 'कुछ नहीं, योंही, बंगाल के अकाल-पीड़ितों का हाल पढ़ रहा था। स्नेह ! हमें बंगाल के लिए कुछ करना चाहिए।'

'Poor Darling' स्नेह ने आह भरकर और पर्स के शीशे की सहायता से अपने ओठों पर की लालिमा को संवारते हुए कहा, 'हम लोग उनके लिए क्या कर सकते हैं, इसके सिवाए कि उनकी आत्माओं के लिए परमात्मा से शान्ति मांगें।'

वह प्रसन्नता से उछल पड़ा 'बस यह बिलकुल ठीक है, हर मन्दिर में और हर मसजिद में मरते हुए बंगालियों के लिए, भूखे-नंगे बंगालियों के लिए प्रार्थना की जाए। कितना सुन्दर विचार है ! स्नेह, तुम समझदार होती जा रही हो।'

'कानवैंट की शिक्षा है ना आखिर।' उसने अपने सुन्दर श्वेत दांतों की नुमायश करते हुए कहा।

वह सोचकर बोला, 'हमें—एक—रेज़ोल्यूशन भी पास करना चाहिए।'

'वह क्या होता है ?' स्नेह ने बड़े भोलेपन से पूछा और अपनी साड़ी का पल्लू ठीक करने लगी।

'अब यह तो मुझे भी ठीक से मालूम नहीं,' वह बोला, 'इतना अवश्य जानता हूं कि जब कभी देश पर कोई आफत आती है तो रेज़ोल्यूशन अवश्य पास किया जाता है। सुना है रेजोल्यूशन पास कर देने से सब काम स्वयं ही ठीक हो जाते हैं...मेरा ख्याल है, मैं अभी टेलीफोन करके शहर के किसी नेता से रेज़ोल्यूशन के सम्बन्ध में पूछता हूं।'

'रहने भी दो डार्लिंग,' स्नेह ने मुस्कराते हुए कहा। 'देखो, जूड़े में फूल ठीक सजा है ?'

उसने नीलराज की कोमल डंडी को जूड़े के अन्दर थोड़ा-सा दबा लिया। 'बड़ा प्यारा फूल है, नीला, जैसे कृष्ण का शरीर, जैसे नाग का फन, जैसे विष का रंग।'

फिर कुछ सोचकर बोला, 'नहीं, कुछ भी हो, रेज़ोल्यूशन अवश्य पास होना चाहिए। मैं अभी टेलीफोन करता हूं।'

स्नेह ने अपने हाथ को ज़रा-सी हरकत देकर उसे रोक दिया। कोमल उंगलियों का स्पर्श एक रेशमी रौ की तरह उसके शरीर की रग-रग में फैलता चला गया—धीरे-धीरे बहती हुई उस लहर ने उसे बिलकुल बेबस कर दिया और वह तट की तरह निश्चेष्ट हो गया।

'अन्तिम रम्बा कितना अच्छा था !' स्नेह ने उसे याद दिलाते हुए कहा।

और उसके मस्तिष्क में पुनः च्यूंटियां सी रेंगने लगीं। बंगाली अकाल-पीड़ितों की पंक्तियां भीतर घुसती चली आ रही थीं। वह उन्हें बाहर निकालने में सफल हो बोला, 'मैं सोचता हूं स्नेह, रेज़ोल्यूशन पास करने के बाद हमें क्या करना चाहिए......मेरे ख्याल में उसके बाद हमें अकाल-ग्रस्त इलाके का दौरा करना चाहिए—क्यों ?'

'बहुत मानसिक परिश्रम से काम ले रहे हो इस समय,' स्नेह ने किंचित घबराए हुए स्वर में कहा। 'बीमार हो जाओगे ! जाने दो, वह बेचारे तो मर रहे हैं, उन्हें आराम से मरने दो, तुम क्यों मुफ्त में परेशान होते हो ?'

'अकाल-ग्रस्त इलाके का दौरा करूंगा, यह ठीक है, स्नेह। तुम भी चलोगी न ?'

'कहां ?'

'बंगाल के गांवों में।'

'ज़रूर—लेकिन वहां किस होटल में ठहरेंगे ?'

होटल का नाम सुनकर उसने अपने विचार का वहीं अपने मस्तिष्क में गला घोंट दिया और कब्र खोदकर वहीं दफ़ना दिया। भगवान् जाने उसका मस्तिष्क इस प्रकार की कितनी अपूर्ण आशाओं, आकांक्षाओं का मरघट बन चुका था।

वह एक बालक की तरह रूठा हुआ था, अपने जीवन से बेज़ार।

स्नेह ने कहा 'मैं तुम्हें बताऊं, एक शानदार नृत्यपार्टी हो जाए ग्रांड में, दो सौ रुपया प्रति टिकट और शराब के पैसे अलग और जो रकम इस प्रकार एकत्रित हो वह बंगाल रिलीफ़ फंड में...।'

'अरे—रे......' उसने कुर्सी से उछलकर स्नेह को अपने गले से लगा लिया 'मेरी जान ! तुम्हारी आत्मा कितनी सुन्दर है।'

'तभी तुमने कल रात अंतिम रम्बा के बाद मुझसे विवाह की प्रार्थना की थी।' स्नेह से हंसकर कहा।

'और तुमने क्या उत्तर दिया था ?' उसने पूछा।

'मैंने इंकार कर दिया था' स्नेह ने शरमाते हुए कहा। 'बहुत अच्छा किया' वह बोला। 'उस समय मैं शराब के नशे में था।'

कार जीवनी राम सीवनी राम, पीवनी राम भोंडू मल तम्बाकू विक्रेता की दुकान पर रुकी। सामने ग्रांड होटल की इमारत थी। किसी मुग़ल बादशाह के मक़बरे की तरह शानदार और विस्तृत।

उसने कहा, 'तुम्हारे लिए कौन-से सिग्रेट ले लूं ?'

'रोज़। मुझे उनकी सुगंधि पसंद है' स्नेह ने कहा।

'अभी दू दिन खेते पाई फ़ी की छू खेते दाव।'

एक वंगाली लड़का धोती पहने हुए भीख मांग रहा था। उसके साथ एक छोटी-सी लड़की थी। मैली-कुचैली, धूल में अटी हुई [illegible] अधमुंदी आंखें। स्नेह ने घृणा से मुंह फेर लिया।

'मेम साहव एकटा पोये शावाओ' लड़का गिड़गिड़ा रहा था।

'तो मैं रोज़ ही ले आता हूं।' यह कहकर वह [illegible] राम पीवनी राम भोंडूमल तम्वाकू विक्रेता की दुकान के भीतर [illegible] गया।

स्नेह कार में बैठी रही, लेकिन वंगाल की भूखी [illegible] उसके मस्तिष्क में भिनभिनाती रहीं। मेम साहव………………मेम साहव ……………मेम साहव। मेम साहव ने दो-एक बार उन्हें झिड़क दिया लेकिन भूख झिड़कने से कहां दूर होती है ? वह और भी [illegible] जाती है। लड़की ने डरते-डरते अपने नन्हे-नन्हे हाथ स्नेह के [illegible] लगा दिए और उसका पल्लू पकड़कर गिड़गिड़ाने [illegible] 'मेम साहव………मेम साहव………मेम साहव।'

स्नेह अव विलकुल तंग आ गई थी। उसने [illegible] लिया। इतने में वह भी आया। स्नेह बोली, 'यह भिखारी [illegible] परेशान करते हैं ? कारपोरेशन कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता [illegible] जब से तुम दुकान के भीतर गए हो………वह………'

उसने भिखारी लड़के को जोर से [illegible] लगाई और [illegible] को चुटिया से पकड़कर जोर से परे धकेल दिया और [illegible] कर ग्रांड होटल के पोर्च में ले आया।

वंगाली लड़की जो झटका लगने से दूर जा गिरी थी [illegible] पर कराहने लगी। लड़के ने अपनी छोटी बहिन को उठाने की कोशिश करते हुए कहा, 'तुमार को चोट लगे न तो!'

लड़की सिसकने लगी……

नृत्य जोवन पर था।

स्नेह और वह एक मेज़ के किनारे बैठे हुए थे।

स्नेह ने पूछा, 'कितने रुपये इकट्ठे हुए ?'

'साढ़े छः हज़ार।'

'अभी तो नृत्य ज़ोरों पर है, सुवह चार वजे तक...'

'नौ हज़ार रुपया हो जाएगा' वह बोला।

'आज तुमने बहुत काम किया है' स्नेह ने उसकी उंगलियों को छूकर कहा।

'क्या पियोगी ?'

'तुम क्या पियोगे ?'

'जिन और सोडा।'

स्नेह बोली, 'बैरा, साहब के लिए एक लार्ज जिन लाओ और सोडा।'

'और तुम ?'

'नाचते-नाचते और पीते-पीते परेशान हो गई हूं।'

'अपने देश की खातिर सब कुछ करना पड़ता है डार्लिंग।' उसने स्नेह को ढारस देते हुए कहा।

'ओह, मुझे इम्पीरियलिज़्म से कितनी घृणा है !' स्नेह बोली। 'बैरा, मेरे लिए एक 'वर्जन' लाओ।'

बैरे ने 'वर्जन' का पैग लाकर सामने रख दिया। 'जिन' की श्वेतता में वरमाउथ की लाली इस प्रकार नज़र आती थी जैसे स्नेह के सुगंधित चेहरे पर उसके लाल-लाल ओठ। स्नेह ने पैग बनाया और काकटेल का रंग सतरंगी हो गया। स्नेह ने पैग उठाया और बिजली के प्रकाश ने उसके पैग में घुलकर याकूत की-सी चमक उत्पन्न कर दी। याकूत स्नेह की उंगलियों में थर्रा रहा था। याकूत जो रक्त की तरह सुर्ख था।

.......नृत्य जोवन पर था और वह और स्नेह नाच रहे थे। एक गत, एक ताल, एक लय, समुद्र दूर..........बहुत दूर.......कहीं नीचे

चला गया था और ज़मीन लुप्त हो गई थी और वे आकाश में उड़ रहे थे और स्नेह का मुखड़ा उसके कंधे पर था और स्नेह के वालों में वसी हुई सुगंधि उसे बुला रही थी। वाल वनाने का ढंग कोई स्नेह से सीखे। यह आम भारतीय लड़कियां तो बीच में से या एक ओर से मांग निकाल लेती हैं और तेल चुपड़कर वालों में कंघी कर लेती हैं। वहुत हुआ तो दो चोटियां कर डालीं और अपने विचार में फैशन की शहज़ादी वन वैठीं। लेकिन यह स्नेह ही जानती है कि वालों का एक अलग महत्व है, उनका अपना सौंदर्य होता है। उनका वनाव-शृंगार नारी के नारीत्व का शिखर है। जैसे कोई चित्रकार सादा तख्ते पर सौंदर्य की सुन्दर रेखाएं खींचता है, उसी प्रकार स्नेह भी अपने वाल संवारती थी। कभी उसके वालों में कंवल के फूल वन जाते थे, कभी कानों पर नाग के फन। वह कभी चांद का हाला हो जाते, कभी इन वालों में हिमालय की वादियों की-सी ऊंच-नीच उत्पन्न हो जाती। स्नेह अपने वालों के शृंगार में ऐसे नुक्ते पैदा करती थी कि मालूम होता था, स्नेह की वुद्धि उसके मस्तिष्क में नहीं, उसके वालों में है।

नृत्य जोवन पर था और ये वाल उसके गालों से स्पर्श कर रहे थे। उसके अंग-अंग में नृत्य का वहाव था और उसके नथनों में उस सुगंधि का इतर। उसका शरीर और स्नेह का शरीर पिघलकर एक हो गए थे और एक शोले की तरह साज़ की धुन पर लहरा रहे थे। एक शोला, एक फन, एक विष······एक लहर······लहरें······लहरें हल्की-हल्की, गरम-गरम-सी लहरें, तट को चूमती हुई, लोरियां देकर थपक-थपककर सुलाती हुई, सो जाओ, मृत्यु में जीवन है। हरकत न करो, शान्ति में जीवन है, स्वतन्त्रता न मांगो, परतंत्रता ही जीवन है। चारों ओर हाल में एक मीठा-सा विष वसा हुआ था। शराव में···औरत में···नृत्य में ···स्नेह के नीले साए में, उसकी अनुभूतिपूर्ण मुस्कान में, उसके अध-खुले ओठों के भीतर कांपती हुई मोतियों की लड़ी में विष···विष और निद्रा और स्नेह के धीरे-से खुलते हुए, वन्द होते हुए ओठ और संगीत

का विष, सो जाओ…सो जाओ…सो जाओ…एकाएक हाल में बिजली बुझ गई और वह स्नेह के ओठों से ओठ मिलाए, उसके शरीर से शरीर मिलाए, मद्धम-मद्धम, धीमे-धीमे, हौले-हौले, नृत्य के झूले की गहरी, नरम और गरम गोद में खो गया, बह गया, सो गया, मर गया…!'

तीसरा भाग : वह आदमी जो अभी जीवित है

…मैं मर चुका हूं ? मैं जीवित हूं ?…मेरी फटी-फटी ज्योतिहीन आंखें आकाश में किसे ढूंढ़ रही हैं ? आओ पल भर के लिए इस दूतभवन की सीढ़ियों पर बैठ जाओ और मेरी कहानी सुनते जाओ—जब तक कि पुलिस, सेवा-समिति या अंजुमन खुद्दाम-उल-मुसलमीन मेरी लाश को यहाँ से उठा न ले जाएं। तुम मेरी कहानी सुनलो, घृणा से मुंह न फेरो, मैं भी तुम्हारी तरह मांस-हाड़ का बना हुआ मनुष्य हूं। यह सच है कि अब मेरे शरीर पर मांस कम और हाड़ अधिक नज़र आते हैं और उनमें भी सड़ाव उत्पन्न हो रहा है और नाक से पानी के बुलबुले से उठ रहे हैं, लेकिन यह तो विज्ञान की एक साधारण सी क्रिया है। तुम्हारे और मेरे शरीर में केवल इतना फर्क है कि मेरे दिल की हरकत बन्द हो गई है, मस्तिष्क ने काम करने से इन्कार कर दिया है और पेट अभी तक भूखा है। अर्थात् अब भी इतना भूखा है कि मैं सोचता हूं, यदि तुम चावल का एक दाना ही मेरे पेट में रख दो तो वह फिर से काम करने लगेगा, आज़मा कर देख लो। किधर चले ? ठहरो, ठहरो, ठहरो, न जाओ, मैं तो यों ही मजाक कर रहा था। तुम घबरा गए, कलकत्ते के मुर्दे भी भीख मांगते हैं ! भगवान् के लिए न जाओ, मेरी कहानी सुन लो, हां-हां इस चावल के दाने को अपनी मुट्ठी में संभाल कर रखो। अब मैं तुमसे भीख नहीं मांगूंगा क्योंकि मेरा शरीर अब गल चुका है। इसे चावल के दाने की

आवश्यकता नहीं रही। अब यह स्वयं एक दिन चावल का दाना बन जाएगा। नरम-नरम मिट्टी में, जिसके अणु-अणु में नदी का पानी रचा होगा, यह शरीर घुल जाएगा। अपने अन्दर धान की पनीरी को उगते हुए देखेगा और फिर यह एक दिन पानी के स्तर से ऊपर सिर निकालकर अपने सब्ज-सब्ज़ खोशों को हवा में लहराएगा, मुस्कराएगा, हंसेगा, खिलखिलाएगा। किरणों से खेलेगा। चांदनी में नहाएगा, पक्षियों के चहचहों और ठण्डी वायु के झोंकों के मृदु चुम्बनों से इसके जीवन के अंग-अंग में एक नया सौन्दर्य, एक नया संगीत उत्पन्न होगा। चावल का एक दाना···हर ख़ोशे के धान के खोल में चावल का एक दाना होगा, सीपी के मोती की तरह उजला, स्वच्छ और सुन्दर···आज मैं तुमसे एक भेद की बात कहता हूं, संसार का सबसे बड़ा भेद, जो तुम्हें एक मुर्दा ही बता सकता है; और वह यह है कि भगवान् से प्रार्थना करो कि वह तुम्हें मनुष्य न बनाए, चावल का एक दाना बना दे। उस सर्व-व्यापक के सामने गिड़गिड़ाओ, विनती करो, व्रत रखो, चिल्ला काटो, जिस प्रकार भी हो सके यह प्रयत्न करो कि वह तुम्हें मनुष्य न बनाए, चावल का एक दाना बना दे। यद्यपि प्राण मनुष्य में भी है और चावल के दाने में भी, लेकिन जो प्राण चावल के दाने में है, वह मनुष्य के जीवन से कहीं उत्तम है, सुन्दर है, पवित्र है। और मनुष्य के पास भी इन प्राणों के अतिरिक्त और क्या है? मनुष्य की पूंजी, उसका शरीर, उसका बाग, उसका घर नहीं, बल्कि यही उसका जीवन है उसका अपना आप! वह इन सब चीज़ों को अपने लिए इस्तेमाल करता है, अपने शरीर को, अपनी भूमि को, अपने घर को। उसके दिल में कुछ चित्र होते हैं, विचार-ज्वाला के अंगारे, एक मुस्कराहट! वह इन्हीं पर जीता है और जब मर जाता है तो केवल इन्हें अपने साथ ले जाता है।

चावल के दाने का जीवन तुम देख चुके, अब आओ, मैं तुम्हें अपना जीवन दिखाऊं। घृणा से मुंह न फेरो, क्या हुआ यदि मेरा शरीर मुर्दा है, मेरी आत्मा तो जीवित है। और इससे पूर्व कि वह भी मौत की नींद

सो जाए, वह तुम्हें उन दिनों की कहानी सुनाना चाहती है, जब आत्मा और शरीर एक साथ चलते-फिरते, नाचते, गाते, हंसते बोलते थे। आत्मा और शरीर दो में आनन्द है, दो में हरकत है, दो में जीवन है, दो में निर्माण है। जब भूमि और पानी मिलते हैं, तो चावल का दाना उत्पन्न होता है। जब स्त्री और पुरुष मिलते हैं तो एक सुन्दर हंसता हुआ बालक उत्पन्न होता है। जब आत्मा और शरीर मिलते हैं जीवन उत्पन्न होता है। आओ मैं तुम्हें अपने 'दो' की कहानी सुनाऊं—वे दो जो अब अलग हो चुके हैं। आत्मा और शरीर दोनों में केवल इतना भेद है कि जब शरीर अलग हो जाता है तो उसमें सड़ाव उत्पन्न होता है और जब आत्मा अलग होती है तो उसमें से धुआं उठता है। यदि ध्यान से देखोगे तो तुम्हें उस धुएं में मेरे अतीत के चित्र कांपते, दमकते, लुप्त होते नज़र आएंगे''''यह क्या चमत्कार था''''यह मेरी पत्नी की मुस्कराहट थी यह मेरी पत्नी है, शरमाओ नहीं सामने आजाओ ऐ मेरी प्यारी''''इसे देखा आपने ? यह सांवली-सलोनी मूरत, यह घने केश कमर तक लहराते हुए, यह शरमीली मुस्कान, यह झुकी-झुकी हैरान आंखें, यह आज से तीन वर्ष पूर्व की युवती है जब मैंने इसे अतापारा के तट के गांव में समुद्र के किनारे दोपहर के सोए हुए वातावरण में देखा था''''मैं उन दिनों अजात कस्बे में ज़मींदार की लड़की को सितार सिखाता था और यहां अतापारा में दो दिन की छुट्टी लेकर अपनी बड़ी मौसी से मिलने के लिए आया था। यह मौन गांव, समुद्र के किनारे, बांसों के झुण्ड और नारियल के वृक्षों से घिरा हुआ, अपनी उदासी में डूबा था। न जाने हमारे बंगाली गांवों में इतनी उदासी कहां से आ जाती है। धरती मौन है, सामने समुद्र, अथाह समुद्र फैला हुआ है, वातावरण ठिठक-सा गया है। बांस के छप्परों के भीतर अंधकार है। बांस की हांडियों में चावल दबे पड़े हैं। मछली की बू है, तालाब का पानी काई से सब्ज़ है। धान के खेतों में पानी ठहरा हुआ है। नारियल का वृक्ष एक नुकीली बरछी की तरह आकाश की छाती में गहरा घाव डाले खड़ा है। हर स्थान पर, हर समय, पीड़ा

का-सा अनुभव है, ठहराव का अनुभव है, उदासी का अनुभव है, शान्ति, स्थिरता, मृत्यु का-सा अनुभव है। यह उदासी, जो तुम हमारे प्रेम, हमारी समाज, हमारी कला और संगीत में देखते हो, यह उदासी हमारे गांव से शुरू होती है और फिर सारी धरती पर फैल जाती है।

जब मैंने उसे पहले-पहल देखा तो यह मुझे एक जलपरी की तरह सुन्दर नज़र आई। उस समय यह पानी में तैर रही थी और मैं तट की रेत पर टहल रहा था और एक नई धुन सोच रहा था। एकाएक मेरे कानों में एक कोमल स्वर पड़ा 'परे हट जाओ, मैं किनारे पर आना चाहती हूं।' मैंने देखा आवाज़ समुद्र में से आ रही थी। लम्बे रेशमी घने बाल और जलपरी का-सा चेहरा—हंसता हुआ, मुस्कराता हुआ। और दूर परे क्षितिज पर एक नाव थी जिसका मटियाला बादबान धूप में सोने के पत्तरे की तरह चमकता नज़र आ रहा था।

मैंने कहा, 'क्या तुम सात समुद्र पार से आई हो ?'

वह हंसकर बोली, 'नहीं, मैं तो इसी गांव में रहती हूं। वह नाव मेरे बाप की है, वह मछलियां पकड़ रहा है, मैं उसके लिए खाना लाई हूं...ज़रा देखकर चलो। तुम्हारे पास ही नारियल के तने के साथ खाना रक्खा है और वहां मेरी साड़ी भी है।'

यह कहकर उसने पानी में एक डुबकी लगाई और फिर लहरों में फूटते हुए बुलबुलों की रेखा-सी खैंचते हुए किनारे के निकट आ गई। बोली, 'परे हट जाओ और मुझे वह धोती दे दो।'

मैंने कहा, 'एक शर्त पर।'

'वह क्या है ?'

'मैं भी मछली-भात खाऊंगा, बहुत भूख लगी है।'

वह हंसी और फिर सन्न से एक तीर की तरह पानी की छाती को चीरती हुई दूर चली गई जहां उसके चारों ओर सूरज की किरनों ने पानी में सुनहला जाल-सा बुन रखा था और उसका नाज़ुक, कोमल, छरेरा बदन एक नई नाव की तरह उन पानियों में घूमता नज़र आया।

वह फिर घूमी और सीधी किनारे की ओर हो ली लेकिन अब हौले-हौले आ रही थी, धीरे-धीरे, डगमग-डगमग...।

मैंने पूछा, 'क्या हुआ है तुम्हें ?'

बोली, 'आजकल भात बहुत महंगा है, रुपये का दो सेर'। मैं तुम्हें भात नहीं खिला सकती।'

'फिर मैं क्या करूं, मुझे तो भूख...।'

'समुद्र का पानी पियो'—उसने चंचलता से कहा और फिर एक डुबकी लगाई।

जब वह मेरी पत्नी बनकर मेरे घर आई तो भात रुपये का दो सेर था और मेरा वेतन पचास रुपये था। विवाह से पहले स्वयं मुझे सुबह उठकर धान पकाना पड़ता था, क्योंकि ज़मीदार की बेटी स्कूल जाती थी और मुझे प्रातःकाल ही उसे सितार सिखाने जाना पड़ता था। शाम को भी उसे दो घंटे तक अभ्यास कराता था। दिन में भी ज़मींदार बुला लेता था। 'सितार सुनाओ जी, जी बहुत उदास है।'

फिर यह नन्हीं-सी बच्ची हमारे यहां आ गई...इधर आओ बेटा... हां मुस्करा दो, हंस पड़ो, इनसे कह दो मैं बिलकुल अबोध हूं, अनजान हूं, मेरी आयु दो वर्ष की भी नहीं और मुझे झुनझुना बजाने, गुड़िया से खेलने और मां की छाती से लगकर दूध पीने और दूध पीते-पीते उसकी छाती से अपने नन्हे-नन्हे हाथ चिमटाए उसकी गोदी में सो जाने का बहुत शौक है। मैं इतनी पवित्र हूं कि स्वयं बोल भी नहीं सकती, बात भी नहीं करती, केवल मटर-मटर तकती हूं, उस आकाश की ओर जिसके स्वामी ने मुझे इस धरती पर भेजा है कि मैं अपने मां-बाप के दिल में प्रसन्नता की किरन बनकर रहूं और बांस की मैली-सैली छपरिया में खुशी का गीत बनकर घर के आंगन को अपनी हंसी के प्रकाश से भर दूं....मुस्करा दो बेटा !

....हां तो जब यह नन्हीं-सी बच्ची उत्पन्न हुई, उस समय भात रुपये का एक सेर था, लेकिन हम लोग इसपर भी भगवान् के गुण गाते थे

जिसने चावल के दाने बनाए और जमींदार के पांव चूमते थे जिसने हमें चावल के दाने खिलाए और सच बात तो यह है कि बनाने और खाने के बीच में जो चीज़ खड़ी है वह स्वयं एक पूरा इतिहास है। मानव-जीवन के हज़ारों वर्ष की कहानी है। उसकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, दार्शनिकता और साहित्य की पूरी व्याख्या है। बनाना और खाना बहुत साधारण से शब्द हैं लेकिन ज़रा इस गहरी खाड़ी को भी देखिए जो इन दो शब्दों के बीच पड़ती है।

भात रुपये का एक सेर था।

फिर भात रुपये का तीन पाव हुआ।

फिर भात रुपये का आध सेर हुआ।

फिर भात रुपये का एक पाव हुआ।

और फिर भात लुप्त हो गया।

फिर वृक्षों पर से आम, जामुन, कटहल, शरीफे, केले समाप्त हो गए। ताड़ी, साग, सब्ज़ी समाप्त, मछली समाप्त, नारियल सामप्त। कहते हैं ज़मींदार के पास मनों अनाज था और बनिए के पास भी, लेकिन कहां था? किस जगह था? किसी को मालूम न था। अनाज प्राप्त करने की सब तदबीरें निष्फल गईं। गिड़गिड़ाना, विनती करना, भगवान के आगे प्रार्थना करना, भगवान् को धमकी देना। सब कुछ समाप्त हो गया। केवल भगवान् का नाम रह गया, या ज़मींदार और बनिए का घर।

अनाज का तोड़ा देख कर ज़मींदार ने मेरा सितार सिखाना बन्द कर दिया। जब लोग भूखे मर रहे हों उस समय संगीत की किसे सूझती है? पचास रुपये देकर सितार कौन सीखता है?

भूख, निराशा और बिलखती हुई बच्ची!

मैंने अपनी पत्नी से कहा, 'हम कलकत्ते चलेंगे, वहां लाखों लोग बसते हैं, शायद वहां कोई काम मिल जाए।'

'चलो कलकत्ते चलो।'

'चलो कलकत्ते चलो ।' जैसे यह आवाज़ सारे गांव वालों ने सुन ली। गांव का सामाजिक जीवन एक बन्ध की तरह मज़बूत होता है। एकाएक 'चलो कलकत्ते चलो' की आवाज़ ने उस बन्ध का एक किनारा तोड़ दिया और सारा गांव उस छिद्र के रास्ते से वह निकला······चलो कलकत्ते चलो······हर जिह्वा पर यही आवाज़ थी······चलो कलकत्ते चलो···।

सैंकड़ों हज़ारों व्यक्ति उस सड़क पर चल रहे थे। वह सड़क जो बंगाल के दूर फैले हुए गांव में से घूमती हुई कलकत्ते की ओर जा रही थी। वह सड़क जो मनुष्यों के लिए शाहरग की तरह थी।······चलो कलकत्ते चलो······च्यूंटियां रेंग रही थीं। धूल और रक्त में अटी हुई, लिथड़ी हुई, कलकत्ते की लाश की ओर जा रही थीं—हज़ारों-लाखों की संख्या में। और उस क़ाफिले के ऊपर गिद्ध मंडरा रहे थे और सारे वातावरण में मांस की बू थी, चीखें थीं, आहें थीं और आंसुओं की सील और लाशें जो सड़क पर प्लेग के चूहों की तरह बिखरी पड़ी थीं, लाशें जिन्हें गिद्धों ने खा लिया था, और अब उनकी हड्डियां धूप में चमकती नज़र आती थीं, लाशें जिन्हें गीदड़ों ने खा लिया था, लाशें जिन्हें कुत्ते अभी तक रहे थे; लेकिन च्यूंटियां आगे बढ़ती जा रही थीं। ये च्यूंटियां बंगाल के हर भाग से बढ़ती चली आ रही थीं और उनके मस्तिष्क में कलकत्ते की लाश थी ! कोई किसी की सुधि लेने वाला कैसे होता। उन लाखों व्यक्तियों में से हर व्यक्ति अपने लिए लड़ रहा था, जी रहा था, मर रहा था। मृत्यु का एक दिन नियत है। शायद ऐसा ही होना था। उन लोगों की मृत्यु यों ही लिखी थी—उन हज़ारों-लाखों च्यूंटियों की मृत्यु। पेट में भूख का नरक और आंखों में निराशा का गहरा अन्धेरा लिए ये च्यूंटियां अपने बोझल पांव से सड़क पर चल रही थीं, लड़ रही थीं, कराह रही थीं, मर रही थीं ! काश ! यदि मनुष्य में च्यूंटियों ही का सा संगठन होता तो भी यह अवस्था न होती। च्यूंटियां और चूहे भी इस बुरी तरह से नहीं मरते······।

रास्ते में कहीं-कहीं भीख भी मिल जाती थी। हिन्दू हिन्दुओं को और मुसलमान मुसलमानों को भीख देते थे, लेकिन भीख से भला कब किसी का पेट भरा है ? भीख तो ज़ीवन प्रदान नहीं करती। भीख सदैव धोखा देती है—भीख देने वाले को भी और भीख लेने वाले को भी। हमें भी भीख मिली और एक दिन एक पूरा नारियल हाथ लग गया। बच्ची कब से दूध के लिए चिल्ला रही थी और मां की छातियां उस धरती की तरह थीं जिस पर महीनों से पानी की एक बूंद न बरसी हो। उसका फूल-सा शरीर झुलस गया था। वह बार-बार बच्ची को पुचकारने के लिए उसको झुनझुना दे देती। बच्ची को यह झुनझुना बहुत पसन्द था। वह उसे हर समय छाती से लगाए रखती। उस समय भी वह उस झुनझुने को ज़ोर से अपनी मुट्ठी में दबाए अपनी मां के कंधे से लगी बिलक रही थी और रोए जाती थी, जैसे कोई बेबस घायल पक्षी बराबर चीखे जाता है। जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो जाती वह बराबर उसी प्रकार बैन किए जाता है।······लेकिन अच्छा हुआ। ठीक उसी दिन हमें पूरा नारियल मिल गया। नारियल का दूध हमने बच्ची को पिलाया और नारियल हम दोनों ने खाया। ऐसा मालूम हुआ जैसे सारा जहान जी उठा हो।

अब किसी के पास कुछ न था। सब व्यापार समाप्त हो चुका था। केवल मांस का व्यापार हो रहा था। उसके व्यापारी उत्तरी भारत से आए थे। उनमें अनाथालयों के मैनेजर थे, जिन्हें अनाथों की तलाश थी। माता-पिता अपने नन्हे-नन्हे बच्चे उनके हवाले करके उन्हें अनाथ बना रहे थे। वास्तव में निर्धनता ही तो अनाथ उत्पन्न करती है। माता-पिता का जीवित रहना या मर जाना एक प्राकृतिक बात है। उन व्यापारियों में विधवा आश्रमों के कर्मचारी भी थे और ख़ालिस व्यापारी, जो हर प्रकार के नैतिक, धार्मिक और सभ्य धोखेबाज़ी से अलग होकर ख़ालिस व्यापार करते थे। नौजवान लड़कियां बकरियों की तरह टटोली जाती थीं।

माल अच्छा है !

रंग काला है !

ज़रा दुबली है !

मुंह पर चेचक है !

अरे इसकी तो बिल्कुल हड्डियां निकल आई हैं !

चलो, खैर, ठीक है !

दस रुपये दे दो !

पति पत्नियों को, मातायें पुत्रियों को, भाई बहनों को बेच रहे थे। ये वे लोग थे जो यदि खाते-पीते होते तो उन व्यापारियों को जान से मार देने पर तय्यार हो जाते, लेकिन अब यही लोग केवल उन्हें बेच ही नहीं रहे थे बल्कि बेचते समय खुशामद भी करते थे। दुकानदारों की तरह अपने माल की प्रशंसा करते, गिड़गिड़ाते, झगड़ा करते, एक-एक पैसे के लिए मर रहे थे। धर्म, नैतिकता, आत्मिकता, ममता, जीवन की महान् से महान् भावनाओं के छिलके उतर गए थे और नंगा, भूखा, प्यासा, खूंखार जीवन मुंह फाड़े सामने खड़ा था।

मेरी पत्नी ने कहा, 'हम भी अपनी बच्ची बेच दें।'

डरते-डरते, लज्जित सी हो, उसने ये शब्द कहे और फिर तुरन्त ही मौन हो गई। उसने कनखियों से मेरी ओर देखा, जैसे वह अपने शब्दों के कोड़ों का असर देख रही हो। उसकी आंखों में एक ऐसे अपराध का अनुभव था जैसे उसने अपने हाथों से अपनी बच्ची का गला दबा डाला हो, जैसे उसने अपने पति को नंगा करके उसके बदन पर कोड़े लगाए हों, जैसे उसने स्वयं अपने हाथों फांसी का फंदा तैयार किया हो और अब उसकी दुबली-पतली गरदन उसमें लटक रही हो।

मुझे यह शिकायत नहीं कि वह क्यों मर गई। मरने को तो वह उसी समय मर गई थी जब उसने ये शब्द कहे थे। शायद उन शब्दों के जिह्वा तक आने से बहुत समय पहले ही वह मर चुकी थी। लेकिन अब भी समझ में नहीं आता, मरकर भी समझ में नहीं आता, सोचने पर भी

समझ में नहीं आता, कि उसके मुंह से ये शब्द कैसे निकले ? ऐसा कैसे हुआ ? किस भयानक शक्ति ने उसकी ममता को मार दिया था, उसकी आत्मा को कुचल दिया था ? जैसा कि मैंने अभी कहा, मुझे उसके मर जाने का कोई अफसोस नहीं, अफसोस तो यह है कि उसकी ममता क्यों मर गई ? वह ममता जिसे हम सब अमर कहते हैं······मुझे अच्छी तरह याद है मैंने उस समय अपनी बच्ची को छीनकर अपनी छाती से लिपटा लिया था······मैंने क्रोध भरी नजरों से उसकी ओर देखा। लेकिन वह उसी प्रकार—जैसे मेरा उससे कोई सम्बन्ध न हो, मेरे दुःख-क्रोध को ध्यान में लाये बिना, लंगड़ाती हुई मेरे पीछे-पीछे आ रही थी, कोल्हू के अन्धे बैल की तरह। उसके परेशान बाल धूल में अटे हुए थे। शरीर पर धोती तार-तार हो चुकी थी। पांव के घाव से रक्त रिस रहा था और वे आंखें···हाय, वह जलपरी कहां गायब हो गई थी, वह समुद्र में सुनहली मछली की तरह तैरने वाली बंगाली युवती !······वह फूल की सी सुन्दरता, जिसमें ताज का मरमर, एलोरा के मन्दिरों की महानता और अशोक के कुतबों की स्थापना घुली हुई थी, आज किधर गायब हो गई थी ? किस लिए यह सौन्दर्य, यह ममता, यह आत्मा उस सड़क पर एक रौंदी हुई लाश की तरह पड़ी थी ? यदि यह सच है कि स्त्री एक विश्वास है, एक चमत्कार है, जीवन की सचाई है' उसकी मंजिल, उसका भविष्य, तो मैं यह कह सकता हूं कि यह विश्वास, यह सचाई, यह चमत्कार चावल के एक दाने से उगता है और उसके न होने से मर जाता है।

जलपरी ने मेरी गोद में दम तोड़ दिया। वह थकी-मांदी, धूल में अटी हुई, उसी सड़क के किनारे सो गई, मेरी गोद में, दो-तीन हिचकियां, और श्वास गायब····न जाने मेरा मस्तिष्क क्यों मुझे उस क्षण की ओर घसीट कर ले गया जब मैंने पहली बार उसके ओठों को चूमा था और उसके महकते हुए श्वास ने मुझे सुगन्ध-राज के फूलों की याद दिलाई थी। इस समय भी वही सुगन्ध-राज के फूलों की महक तेजी से मेरे नथनों में घुसती चली आई और मेरी आंखों में आंसू आ गए और मैं उसके मुर्दा

ओठों की ओर तकने लगा। और मेरे आंसू उसके ओठों पर, उसके गालों पर, गिरने लगे। वह मेरी गोद में मरी पड़ी थी। जलपरी जो उन्नीस वर्ष की आयु में मर गई, धूल में अटी हुई, नंगी, भूखी, प्यासी। जलपरी चुडैल बनकर मर गई। मुझे मौत से कोई शिकायत नहीं, अपने भगवान से कोई शिकायत नहीं, जीवन से, सड़क पर से गुजरते हुए अन्धे काफले से, किसीसे कोई शिकायत नहीं। केवल यही जी चाहता है कि वह इस प्रकार न मर जाती। मैं एक मनुष्य की तरह, नहीं, एक मित्र की तरह, अपने भगवान से पूछना चाहता हूं कि इसमें क्या बुराई थी यदि वह जीवित रहती ? अपनी पूरी आयु व्यतीत करती। उसका एक छोटा-सा घर होता, उसके बाल-बच्चे होते। वह उनका पालन करती, उसे अपने पति का प्रेम प्राप्त होता, एक साधारण घराने की छोटी-छोटी प्रसन्नताएं। संसार ऐसे करोड़ों व्यक्तियों से भरा पड़ा है जो जीवन से इन छोटी-छोटी प्रसन्नताओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते, न राज्य, न ख्याति। फिर भी उसे ये छोटी-छोटी प्रसन्नताएं न प्राप्त हुईं। वह इस प्रकार क्यों मर गई, और यदि उसे मरना ही था तो वह समुद्र के तट और नारियल के झुण्ड ही को देखकर मरती। यह कैसी मृत्यु है कि हर ओर वीरानी है और लाशें हैं और आहें और चीत्कार हैं, सड़क पर धूल और चुपचाप चलते हुए कदमों की चाप है और दूर कहीं कुत्ते रो रहे हैं……!

मैंने उसे दफनाया नहीं, मैंने उसे जलाया भी नहीं, मैंने उसे वहीं सड़क के किनारे छोड़ दिया और अपनी बच्ची को छाती से चिमटाए आगे बढ़ गया।

अभी कलकत्ता दूर था और मेरी बच्ची भूखी थी। वह अब रो भी न सकती थी, कंठ से स्वर न निकलता था, वह बार-बार अपना मुंह ऐसे खोलती जैसे मछली जल से बाहर निकलकर पानी की घूंट के लिए अपने ओंठ खोलती है। हाय ! वह नन्हीं-सी जलपरी अपने छोटे-से खिलौने को अपनी छाती से चिमटाए एक बुझते हुए दीपक की तरह मेरी

आंखों के सामने समाप्त हो रही थी, बुझ रही थी और मैं चला जा रहा था। मेरे पास और लोग भी थे। मुर्दों का काफला ! हर एक का अपना संसार था, लेकिन हर व्यक्ति उसी मौत की वादी में से गुज़र रहा था और आंखों में, चेहरों पर, उसी दैवी शक्ति की छाया मंडरा रही थी जो उस वादी की निर्माता थी। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा······ ऐ धरती-आकाश के निर्माता ! इस अबोध बालिका की ओर देख··· क्या तेरे राज्य में इसके लिए दूध की एक बूंद भी नहीं ? अन्नदाता !··· देख यह किस प्रकार बार-बार मुंह खोलती है, बेकरार होती है और तड़पकर रह जाती है। ऐ भगवान् ! तूने सुन्दर मृत्यु बनाई है लेकिन यह मृत्यु तो सुन्दर नहीं, यह मृत्यु तो मासूम नहीं ! यह मृत्यु तो इस नन्हे से जीवन के योग्य नहीं······सुन ले ऐ ब्रह्माण्ड की अनुभूतिपूर्ण महान् शक्ति···ऐ भगवानों के अत्याचारी प्रधान······तू इस सुन्दर कली को अभी से क्यों कुचल कर रख देना चाहता है ? इसकी आशाओं के संसारों को देख······समुद्र के बुलबुलों की उज्ज्वल रेखा, धीरे से बहती हुई नाव, एक संगीत अपने शिखर को पहुंचा हुआ। नारियल के झुण्ड में स्त्री और पुरुप का पहला चुम्बन······निर्दयी, कमीने, पतित !!!

लेकिन न प्रार्थनाएं काम आईं न गालियां और मेरी बच्ची भी मर गई। किस प्रकार तड़पकर उसने प्राण दिए ! उसका छटपटाना मेरी इन पथरीली, स्थिर, निष्प्रकाश आंखों से पूछो। वह दूध की एक बूंद के लिए मर गई। वह बूंद जो न आकाश से बरसी, न धरती ने उगली। निश्चेष्ट आकाश, निश्चेष्ट धरती और यह जालिम सड़क।

मरने से कुछ समय पूर्व मेरी बच्ची ने अपना प्यारा झुनझुना मुझे दे दिया। देखो यह अब भी मेरी मुट्ठी में दबा पड़ा है। यह अमानत उसने मेरे हवाले की थी। नहीं, नहीं, यह झुनझुना उसने मुझे प्रदान कर दिया था। लापरवाही के साथ, एक ऐसे अबोध ढंग से उसने उसे मेरे हवाले कर दिया था कि मुझे विश्वास हो गया कि उसने मुझे प्रदान कर दिया है; मुझे क्षमा कर दिया है। मुझे अपनी कृपाओं से मालामाल कर

दिया है। उसने यह झुनझुना मेरे हाथ में दे दिया और फिर मेरी गोद में मर गई। यह एक लकड़ी का झुनझुना है लेकिन यह मेरा विश्वास है कि यदि वह क्लियोपैट्रा होती तो अपना प्रेम मेरे अर्पण कर देती। यदि विक्टोरिया होती तो अपना राज्य मेरे हवाले कर देती। यदि मुमताज़-महल होती तो ताजमहल मेरे हवाले कर देती, लेकिन वह तो एक निर्धन नन्ही-सी बच्ची थी और उसके पास केवल यही एक लकड़ी का छोटा-सा झुनझुना था जो उसने अपने निर्धन पिता के हवाले कर दिया। तुममें से कौन ऐसा जौहरी है जो इस लकड़ी के झुनझुने का मूल्य आंक सके ? बड़े आदमियों के बलिदानों पर वाह-वाह करने वालो, ले जाओ इस लकड़ी के झुनझुने को, और मानवता के उस मन्दिर में रख दो जो आज से हज़ारों साल बाद मेरी आत्मा तुम्हारे लिए बनाएगी……!!

आखिर कलकत्ता आ गया, भूखी वीरान बस्ती, निर्दयी शहर। कहीं कोई ठिकाना नहीं, कहीं रोटी का कौर तक नहीं। स्यालदा स्टेशन, श्याम बाज़ार, बड़ा बाज़ार, हैरिसन रोड़, ज़करिया स्ट्रीट, बो बाज़ार, सोना-गाची, न्यू मार्केट, भवानीपुर, कहीं चावल का एक दाना नहीं, कहीं वह नज़र नहीं जो मनुष्य को मनुष्य समझती है।

होटलों के बाहर भूखे मरे पड़े हैं। झूठी पत्तलों में कुत्ते और मनुष्य एक साथ खाना टटोल रहे हैं। कुत्ते और मनुष्य लड़ रहे हैं। एक मोटर फर्राटे से गुज़र जाती है।

नंगे बदन में पसलियां लोहे की जंज़ीरें मालूम होती हैं। उनके भीतर आत्मा को क्यों कैद कर रखा है। उसे उड़ जाने दो, इस भयंकर जेलखाने का दरवाज़ा खोल दो, एक मोटर फर्राटे से गुज़र जाती है।

लेकिन शरीर आत्मा की प्रार्थना नहीं सुनता…मायें मर रही हैं, बच्चे भीख मांग रहे हैं। पत्नी मर रही है, पति रिक्शा वाले साहब की खुशामद कर रहा है। यह नौजवान औरत बिलकुल नग्न है। इसे यह पता नहीं कि वह जवान है, वह औरत है। वह केवल यह जानती है कि वह भूखी है और यह कलकत्ता है…भूख ने सुन्दरता को भी समाप्त कर दिया है।

मैं इस दूत-भवन की सीढ़ियों पर मर रहा हूं। मूच्छित पड़ा हूं। कुछ लोग आते हैं, मेरे सिरहाने खड़े हो जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे मुझे सिर से पांव तक देख रहे हैं। फिर मेरे कानों में एक मद्धम सी आवाज़ आती है, जैसे कोई कह रहा है :—

'हरामी हिन्दू होगा, जाने दो, आगे बढ़ो' वह आगे बढ़ जाते हैं। अंधकार बढ़ जाता है

फिर कुछ लोग रुकते हैं। कोई मुझ से पूछ रहा है……'तुम कौन हो ?'

मैं कठिनता से अपने भारी पपोटे उठाकर आंखें खोलकर उत्तर देता हूं, 'मैं भूखा हूं।'

वे यह कहते हुए चले जाते हैं, 'साला कोई मुसलमान मालूम होता है।'

भूख ने धर्म को समाप्त कर दिया है।

अब चारों ओर अंधेरा है। पूर्ण अंधकार, प्रकाश की एक किरन भी नहीं। चुप्पी, गहरी निस्तब्धता !

एकाएक कलीसाओं में, मन्दिरों और मस्जिदों में प्रसन्नता की घंटियां बजने लगती हैं। सारा वातावरण मृदु स्वरों से परिपूर्ण हो जाता है।

एक अखबार बेचने वाला चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है 'तेहरान में मानवता के तीन बड़े नेताओं की घोषणा, एक नये संसार की रचना…… !'

एक नये संसार की रचना !!

मेरी आंखें आश्चर्य और प्रसन्नता से खुली की खुली रह जाती हैं। अनुभव पत्थर की तरह जम जाते हैं।

मेरी आंखें उस समय से खुली की खुली हैं। मैं राजनीतिज्ञ नहीं हूं, सितार बजाने वाला हूं। शासक नहीं हूं, आज्ञा पालन करने वाला हूं। लेकिन शायद एक निर्धन गायक को भी यह पूछने का अधिकार है कि उस नये संसार की रचना में क्या उन करोड़ों भूखे-नंगे आदमियों का भी

मुन्ना रोते-रोते बोला, 'घोड़ा बड़ा शैतान है। इसने मुझे नीचे गिरा दिया।'

लतिका बोली, 'तूने बेचारे की बाग जो ज़ोर से खैंच दी थी।'

मुन्ना बोला, 'मैंने मां को देखा था ना।'

लतिका ने उसे चूमकर अपनी छाती से लगा लिया; बोली, 'अच्छा, देख, मैं बाज़ार जा रही हूं—मुन्ने के लिए क्या लाऊं ?'

मुन्ना बोला, 'मैं तो बाजा लूंगा। घोड़े पर चढ़कर बाजा बजाऊंगा और अपनी फौज के आगे-आगे चलूंगा।'

यह कहते-कहते मुन्ने का चेहरा बहुत गम्भीर हो गया। बालों की लटें उसके माथे पर बिखर गई थीं। वह रोना भूल गया था। आंसू अभी तक उसके गालों पर चमक रहे थे। लतिका ने रूमाल से उसके आंसू पोंछ दिए और उसकी लटों में उंगलियां फेरकर उन्हें पीछे छटका दिया।

'लतिका, तू किधर जा रही है ?'

यह चाची की आवाज़ थी। चाची हाथ पोंछती हुई रसोई से बाहर निकल रही थी। चाची की आयु बहुत बड़ी थी। उसके सिर के बाल सफेद थे। चेहरे पर झुर्रियां थीं। शरीर सूखा-सूखा और दुबला-पतला था। उनका चेहरा बहुत से दुखों की कहानी कहता था, लेकिन इसपर भी चाची के चेहरे पर एक विचित्र-सी मोहनी अबोधता थी जो जाने इस बुढ़ापे में भी, जब आदमी सब कुछ खो बैठता है, कैसे बाकी रह गई थी। आज-कल के बच्चों के चेहरों पर भी ऐसी अबोधता नहीं मिलती। चाची ने कैसे और किस यत्न से उस अबोधता की रक्षा की होगी, इसका भेद नहीं खुलता। चाची की आयु साठ और आठ वर्ष की थी। इस आयु में चाची ने अपने गांव को, जो ब्रह्मपुत्र के किनारे आबाद था, दो बार बहते देखा। दो बार फिर बसते देखा। सात बार छोटे-छोटे अकाल आए और तीन बड़े-बड़े अकाल, और अन्तिम अकाल में तो चाची का सारा परिवार समाप्त हो गया, और चाची अपना गांव छोड़कर लतिका के यहां कलकत्ते चली

आई। रायबहादुर मजूमदार लेन में लतिका का घर था। चाची जब पहली बार कलकत्ते आई तो उन्हें यह घर भी बड़ी मुश्किल के बाद मिला और जब वह घर के भीतर प्रविष्ट हुई तो उस समय सामने के मन्दिर में आरती उतारी जा रही थी, लेकिन लतिका के घर में आरती के समय भी अन्धेरा था और लतिका का पति कांपती हुई सीढ़ियों पर से दबे पांव उतरकर बाहर जा रहा था। वह चाची के लिए केवल एक मिनट के लिए रुका और फिर यह कहकर तुरन्त चला गया, 'चाची, मैं फिर आऊंगा। इस समय रुक नहीं सकता। एक जरूरी काम है। मेरे पीछे लतिका तुम्हारा सब ख्याल रखेगी।' और फिर चाची ने देखा कि लतिका के पति ने क्षणभर के लिए लतिका का हाथ अपने हाथ में ले लिया और फिर उसे छोड़ दिया और अन्धकारमय सीढ़ियों से नीचे उतरकर पिछले दरवाजे से बाहर जाने लगा, पिछवाड़े की गली में। चाची ने देखा कि लतिका ने बड़ी सावधानी से उसके लिए दरवाज़ा खोला। प्रकाश की एक पतली-सी रेखा तड़पती हुई भीतर आई और फिर दरवाज़ा बन्द हो गया। लेकिन उस एक क्षण में चाची ने देखा कि लतिका एक लम्बे कद की, सांवले मुखड़े की, आकर्षक लड़की है। उसने श्वेत साड़ी पहन रखी है और उसकी आंखों में आंसू झलमला रहे हैं। उन आंसुओं को देखकर चाची क्षणभर के लिए कांप उठी थी। लोग धान, कपास और गेहूं बोते हैं, चाची ने तो अपने जीवन में केवल आंसू बोए थे। उन्होंने सोचा था कि शायद यहां कलकत्ते में ये आंसू नहीं होंगे। ये आंसू तो केवल ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे होते हैं जहां किसान चावल के मोतियों की फसल बोते हैं और आंसू काटते हैं। क्या यह संसार ही ऐसा दुख भरा है? एक क्षण के लिए चाची जिस सुख-चैन की तलाश में कलकत्ते आई थीं, उसे भूल गईं। उन्होंने धीरे से लतिका का हाथ पकड़कर बड़े कोमल स्वर में पूछा था, 'क्या बात है बहू?' लतिका मुस्कराकर अपने आंसुओं को पी गई। उसने चाची का हाथ जोर से दबाकर बड़े मद्धम स्वर में कहा था, 'कुछ नहीं चाची, आओ, ऊपर आ जाओ।'

लतिका ने चाची का बुक्चा सम्भाल लिया था और उसे ऊपर ले गई थी।

उस दिन से आज तक चाची ने लतिका के पति को फिर कभी नहीं देखा था। चाची अपना गांव छोड़कर इसलिए यहां आई थीं कि यहां ब्रह्मपुत्र नहीं है। अब उन्हें पता चला जैसे ब्रह्मपुत्र यहां भी है और जब तक लतिका का पति यह नदी पार न कर ले वह वापस घर नहीं आ सकता। बस उन्हें इतना ही अन्दाजा हो सका। वह अक्सर बालकनी में खड़े-खड़े गीले कपड़े फैलाते हुए सोचा करतीं और उनकी आंखों की कांपती हुई हैरान पुतलियां नीचे गली में भागे जा रहे लोगों को देखकर दुखित हो उठतीं। ये सब लोग किस तूफान की पेशवाई को भागे जा रहे हैं ? अभी पानी कहां चढ़ा है ? कहां यह आग लगी है ?

लेकिन चाची इन प्रश्नों का उत्तर ठीक से न दे पातीं, और अपनी कांपती हुई पुतलियों से नीचे गली में गुजरने वाले लोगों को आश्चर्य से देखती रहतीं।

उस समय चाची की आंखों में वही अजीब-सा भय था जब उन्होंने लतिका के निकट आकर पूछा, 'तू कहां जा रही है लतिका ?'

और फिर लतिका को चुप देखकर स्वयं ही कांपते हुए स्वर में फिर पूछ लिया, 'क्या जलसे में जा रही है ?' लतिका की मुस्कराहट बड़ी अच्छी थी। चाची की मुस्कराहट भी बड़ी अच्छी थी लेकिन चाची की मुस्कराहट ऐसी थी जैसे कोई मरने से कुछ क्षण पूर्व जीवन के सारे दुःख-दर्द को समझ ले और समझकर नीले आकाश की ओर देखकर मुस्करा दे। चाची की मुस्कराहट में अन्तरिक्ष की मोहनी थी, लेकिन लतिका की मुस्कराहट सुबह का पहला उजाला थी जो बहुत दूर से या शायद कहीं बहुत निकट से आया था और सितारों की चिलमन उठाकर धीरे-धीरे अन्धकार का पर्दा उलट रही थी—बड़ी मीठी-मीठी, मद्धम मुस्कराहट, जैसे कोई रेशम के ऊपर रेशम रख दे। लेकिन यह मुस्कराहट एक विचित्र घनिष्ठता और दृढ़ता का अनुभव भी लिए हुए थी। जैसे

ब्रह्मपुत्र भी है और तूफान भी है, लेकिन एक नाव भी है जो पार ले जा सकती है।

चाची के ओंठ कांपे। एक श्वेत लट घबराकर मुर्झाए हुए गालों पर गिर पड़ी। उन्होंने एक विचित्र विनयपूर्ण स्वर में लतिका से कहा, 'तुम जलसे में ज़रूर जाओगी ?'

लतिका हंसी। उसने वह श्वेत लट बड़े प्रेम से उठाकर चाची के कान के पीछे घुमा दी और बड़े प्यार से बोली, 'मैं तो आठ बजे से पहले घर पहुंच जाऊंगी चाची। आते ही मुझे खाना दे देना, सचमुच बहुत भूख लग रही होगी।'

लतिका जल्दी से यह कहकर अंधेरी सीढ़ियों से उतरने लगी। चाची सीढ़ियों के ऊपर मुन्ने का हाथ पकड़े देर तक खड़ी रहीं, फिर दरवाजा खुला, प्रकाश की एक पतली-सी रेखा तड़पी। फिर अंधेरा छा गया। मुन्ने ने कहा, 'चाची, चलो! मुझे महाकवि के नन्हे चांद के गीत सुनाओ।'

चाची अब सब कुछ भूल गईं। उन्हें महाकवि टैगोर के नन्हे चांद के गीत बहुत पसंद थे। आज उन्होंने मुन्ने को वह गीत सुनाया, जब बच्चा खो जाता है और मां उसे ढूंढ़ती है और उसका नाम लेकर पुकारती है और बच्चा एक जूही का फूल बनकर उसकी गोदी में आ गिरता है।

गीत गाते-गाते चाची को याद आया, कितने सुन्दर जूही के फूल थे। एक-एक करके वह सब ब्रह्मपुत्र की लहरों में खो गए और अन्त में चाची की गोद खाली रह गई। सब कुछ मिट गया, मोतियों जैसे बेटे और मोतियों जैसे धान की फसलें। अन्त में केवल ब्रह्मपुत्र नदी रही और ज़मींदार की गढ़ी···चाची गीत गाते-गाते चुप हो गईं और उन्होंने मुन्ने को उठाकर ज़ोर से अपनी बांहों में भींच लिया।

मुन्ने ने मचलते हुए कहा, 'उहूं! चाची एक गीत सुनाओ' और अबके चाची ने वह गीत सुनाया जिसमें चांद की नाव आकाश

में हौले-हौले बहती है और बच्चा उसमें बैठा हुआ उसे हौले-हौले खेता जाता है और मुन्ना यह नाव खेते-खेते सो गया।

रायबहादुर मजूमदार लेन से गुज़रकर लतिका अब घनश्यामदास बाज़ार में चल रही थी। चलते-चलते लतिका को एक बार ऐसा लगा कि जैसे कोई उसके पीछे-पीछे चल रहा हो। उसने घूमकर देखा, कोई नहीं था। शायद यह उसका भ्रममात्र था, कोई उसका पीछा नहीं कर रहा था। फिर भी सावधान रहना आवश्यक था। लतिका ने सोचा, शहर में दफा एक सौ चवालीस लग चुकी है, संभलकर चलना चाहिए। लतिका ने चारों ओर देखा। बाज़ार में लोग आ-जा रहे थे। दुकानें सजी हुई थीं। लोग वस्तुएं खरीद रहे थे। बसें और ट्रामें भी गुज़र रही थीं। फिर भी लतिका को ऐसा लगा जैसे यह सारी चुप्पी और शान्ति छिछली है। जैसे यह वातावरण एक पतले बारीक ब्लेड की तरह तना हुआ है ऐसे कि ज़रा-सा हाथ लगाने से रक्त बह निकलेगा। लोग-बाग चल रहे थे, काम कर रहे थे, बोझ उठा रहे थे, और कहीं-कहीं हंसी की आवाज़ भी सुनाई देती थी। फिर भी लतिका को ऐसा जान पड़ता जैसे उसके पीछे क्रोध की एक गूंज है, जैसे कहीं दूर क्षितिज पर लाल-लाल प्रकाश नज़र आकर लुप्त हो जाता है। जैसे रेत के किनारे धीरे-धीरे लहरें आगे बढ़ रही हों और लतिका चौकन्नी होकर, आगे-पीछे देखने लगती।

खिलौनों की एक दुकान पर खड़े होकर उसने मुन्ने के लिए एक बाजा खरीदा और उसे अपने ओठों से लगाकर बजाया। दुकानदार ने मुस्कराकर कहा, 'आप तो यह बहुत अच्छा बजा लेती हैं।' लतिका ने हंसकर बाजा अपने बटुए में रख लिया और दुकानदार को दाम देने लगी। बिलकुल उसी समय उसने फिर महसूस किया जैसे कोई उसके बहुत निकट से गुज़रकर निकल गया हो। उसने घूमकर देखा। कोई नहीं था। सामने दो आदमी गांधी टोपी पहने मज़े में बातें करते हुए चले जा रहे थे, फिर भी लतिका सावधान हो गई। जलसे में जाने से पूर्व

वह आज अपने पति से मिलना चाहती थी जो यहीं कलकत्ते में छुपा हुआ था, लेकिन अब उसने एकदम फैसला कर लिया कि आज वह उससे नहीं मिलेगी। शायद पुलिस पीछा कर रही हो और कहीं वह अपनी मूर्खता से अपने पति के ठिकाने का पता पुलिस को दे दे। लतिका का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। उसने दुकान से उठकर चोर नजरों से उधर देखा जिधर उसका पति छुपा हुआ था। फिर उसने मुंह मोड़ लिया और ग्रे बाज़ार की बस पकड़ ली। फासला यहां से अधिक नहीं था और वह पैदल ही जाना चाहती थी, लेकिन उसने सोचा कि रास्ते में कहीं उसका दिल डांवाडोल न हो जाय। उसने बस पकड़ना ही उचित समझा।

बस में उसे नीलिमा और प्रतिभा मिल गई। नीलिमा बड़ी नाज़ुक-मिज़ाज लड़की थी। वह बहुत अमीर नहीं थी, बहुत सुन्दर नहीं थी, बहुत पढ़ी-लिखी नहीं थी। फिर भी उसे देखकर लोग सदा यह सोचते कि नीलिमा बहुत सुन्दर है, बहुत अमीर है, बहुत पढ़ी-लिखी है। वास्तव में उसके स्वभाव में सलीके और सुघड़ापे को इतना दखल था कि वह अपने छोटे-से घर में, अपनी छोटी-सी आय में, अपने छोटे-से ज्ञान में, इस प्रकार जीवन व्यतीत करती थी कि जीवन अप्रैल के बादल की तरह निर्मल और चमकता हुआ नजर आता। नीलिमा को अच्छी सुगन्धियों का बहुत शौक था, क्योंकि हस्पताल में उसे अक्सर गन्दी, सड़ी बदबूओं से वास्ता पड़ता था और नर्स का काम करते-करते उसे उन बदबूओं से चिढ़-सी भी हो गई थी। इसलिए वह अक्सर संध्या समय छुट्टी के बाद तेज़ सुगन्धि इस्तेमाल करती थी। लेकिन जबसे उसका समाजवादी पति अपनी क्रांतिकारी सरगरमियों के कारण जेल में चला गया था नीलिमा को सुगन्धियों से घृणा-सी हो गई थी। वह अब भी साफ-सुथरी, नाज़ुक लड़की नज़र आती थी। अब भी उसका घर शीशे की तरह चमकता था लेकिन अब उसके बालों में सुगन्धि नहीं थी। इसीलिए तो आज लतिका उसके बालों की सुगन्धि सूंघकर बहुत हैरान हुई।

लतिका ने पूछा, 'क्यों क्या बात है ? पति महाशय से मिलने जा रही हो ?'

नीलिमा मुस्कराई, 'नहीं पगली, मैं तो तेरे साथ जलसे में जा रही हूं।'

और प्रतिभा ने अपने गोल-गोल गाल स्वयं ही थपथपाते हुए कहा, 'राम, राम ! आज तो जैसे सुगन्धियों का तूफान उठ रहा है, चारों ओर चम्बेली-ही-चम्बेली है। और लतिका ने भी तो आज गजब ढा रक्खा है। वसन्त घटाएं बांधकर आई है। और लाल गुलाल चारों ओर बिखर रहा है। सखियो ! क्या यह सब जलसे में जाने की तैयारी है ? वहां यह सुन्दरता किसे दिखाओगी ?'

इतना कहकर प्रतिभा ज़ोर से हंस पड़ी। यह प्रतिभा की विशेष आदत थी कि स्वयं ही बात करके स्वयं ही हंस पड़ती थी। प्रतिभा मोटी-मोटी गुलगुली-सी लड़की थी। उसका इकलौता बेटा भी अपनी मां की तरह मोटा-मोटा, गुथला, भरा-पुरा खुश-मिज़ाज नज़र आता था, लेकिन पति महाशय बड़े तुनक-स्वभाव और गम्भीर थे। प्रतिभा और उसके पति की विशेषताएं उनके बेटे में इकट्ठी हो गई थीं अर्थात् लड़का मां की तरह मोटा-ताज़ा था और बाप की तरह गम्भीर ! ज़रा-सी उंगली दिखाने पर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता। प्रतिभा आज अपने पति और अपने बेटे दोनों को घर में छोड़ आई थी। वह अब अपनी सहेलियों से हंस-हंसकर कह रही थी, 'आज घर में खूब मज़ा रहेगा। ये दोनों महाशय बारी-बारी से रोएंगे और एक-दूसरे के ऊपर बरतन फेंककर अपना दिल बहलाएंगे।'

लतिका बोली, 'अपने घर को इस तरह रखोगी तो कैसे काम चलेगा ?'

प्रतिभा बोली, 'तो क्या करूं सखी, मुझसे तो एक ही बार दो-दो काम नहीं होते। आज सुबह जलसे के लिए भाषण तैयार कर रही थी कि पति महाशय चाय मांगने लगे। चाय दी तो खाना मांगने लगे।

खाना खिलाया तो टाई मांगने लगे। खोई हुई टाई ढूंढ़कर दी तो इतने में लड़के ने कुत्ते के मुंह में उंगली देकर मलहार राग शुरू कर दिया। मैंने कुत्ते को धर के पीटा तो पति महाशय ने शाम कल्याण शुरू कर दिया। अब जब वहां से चली तो दोनों भैरवी गा रहे थे। अब तुम ही बताओ, क्या करूं?'

नीलिमा ने कहा—'बच्चे को तो किसी अच्छे से डाक्टर को दिखाओ।'

प्रतिभा ने चमककर कहा—'कैसे दिखाऊं?' कलकत्ते में अच्छा डाक्टर जितनी फीस लेता है उससे तो हमारे घर भर का राशन चलता है। तो क्या बी० सी० राय को बुलाकर दिखाऊं? तुम भी क्या बोर्जवा समाज के लोगों की सी बातें करती हो कभी-कभी, और फिर यह तो देखो कि मैं खिलाती क्या हूं अपने बेटे को और अपने उनको?'

इतना कहकर प्रतिभा ज़ोर से हंसी और फिर बोली—'आज एक हकीम ने बताया है कि इन्हें मछली में शलजम पकाकर खिलाओ तो मोटे हो जाएंगे। आज ही बाज़ार से शलजम ख़रीद कर लाई हूं—यह देखो।'

प्रतिभा ने अपने पहलू में बंधे हुए शलजम दिखाए और नीलिमा और लतिका आप ही आप मुस्करा दीं। सचमुच प्रतिभा बड़ी भोली लड़की थी। उस पर क्रोध आना बड़ा कठिन था। नीलिमा ने बड़े प्रेम से प्रतिभा के कंधे पर अपना नाजुक हाथ रख दिया और लतिका ने भी बड़े प्यार से प्रतिभा की कमर में हाथ डाल दिया। लतिका भी प्रतिभा को बहुत चाहती थी क्योंकि प्रतिभा महिला संघ में बहुत अच्छा काम कर रही थी और भाषण देने में तो कोई लड़की उससे बाज़ी न ले जा सकती थी, और फिर वह कितनी सरल-स्वभाव थी। कितनी अनथक काम करने वाली थी। कहो तो सुबह से शाम तक एक जगह खड़ी रहे। कहो तो सुबह से शाम तक चलती रहे। धुन की पक्की और अभिमान तो उसे छू तक न गया था। न ही वह अपनी साथी लड़कियों से किसी

बात में जलती थी। कितने ही कठिन-से-कठिन कार्य उसे दिए गए उसने हंस-हंसकर पूरे कर दिए। प्रतिभा की यह हंसी उसके दिल से फूटती थी और फव्वारे के पानी की तरह चारों ओर वातावरण में फैल जाती थी। लतिका ऐसे मुस्कराती थी जैसे चांद बदली में झिलमिलाए। प्रतिभा यूं जैसे समुद्र की बहती हुई लहर सारे तट पर फैल जाए।

लतिका ने धीरे से पूछा—'आज तू जलसे में क्या कहेगी ?'

प्रतिभा ने बड़े आत्म-विश्वास से अपनी गोल-गोल आंखें घुमाकर कहा—'दीदी, देखती जाओ। आज तुम्हारे सड़े-गले समाज के भुस में वह चिंगारी लगाऊंगी कि सारा कलकत्ता जल उठेगा। बस तुम अपनी यह सुन्दर साड़ी बचा लेना।'

प्रतिभा ने यह कह ज़ोर से हंसकर लतिका की पीठ पर हाथ मारा और नाज़ुक-सी नीलिमा उसकी इस हरकत पर अपनी पतली कमर सिकोड़ कर अपनी अप्रसन्नता प्रकट कर रही थी कि इतने में बस बो बाज़ार के नुक्कड़ पर आकर रुक गई और यहां ये तीनों सहेलियां उतर कर इंडियन एसोसियेशन हाल की ओर चल दीं। इतने में दूसरी ओर से एक और बस आकर रुकी और उसमें से एक बड़ी ही सुन्दर लड़की निकली जिसका सजा हुआ जूड़ा, रेशमी साड़ी का कढ़ा हुआ लहरिया और झमझमाता हुआ ब्लाउज़ देखकर प्रतिभा चिल्ला उठी—'अरी उर्म्मिया......उर्म्मिया......ओ मेरी जान उर्म्मिया! आज तूने क्या गज़ब ढाया है। दो बच्चों की मां होकर फिर से नई-नवेली दुल्हन की तरह सजी है।'

उर्म्मिया घोष मुस्कराते हुए आगे बढ़ी। सामने से एक मोटर आ रही थी, इसलिए रुक गई। फिर मोटर गुज़र जाने के बाद उसने बड़ी अदा से अपनी साड़ी संभाली और सरसराती हुई जैसे वायु की लहरों पर उड़ती हुई, ठुमकती हुई, वह सड़क पार करके प्रतिभा, लतिका और नीलिमा से आ मिली। उर्म्मिया घोष भी महिला संघ की कर्मचारी थी और उसका पति सिविल सैक्रेटेरियट में नौकर था, इसलिए वह सदैव

अपनी पत्नी को महिला संघ में काम करने से, मजदूर औरतों से मिलने-जुलने और समाजवादियों के जलसे में जाने से रोकता था। और उम्मिया घोष हंसकर और कभी लड़झगड़कर टाल देती थी। फिर एक दिन मिस्टर घोष बोले 'सरकार मेरे दोनों बच्चों को नौकरी नहीं देगी। यदि तू नहीं मानेगी तो एक दिन मेरी नौकरी भी छिन जाएगी' और जब उसपर भी उम्मिया घोष न मानी तो इतने क्रोधित हुए, इतने क्रोधित हुए......

लतिका ने जब यह सुना तो उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। बोली, 'और तूने कुछ नहीं कहा, चुपके से पिटती रही।'

उम्मिया घोष बोली 'मैंने क्या कहा, यह तो जाने दे इस समय। यह तो प्रतिदिन की बक-बक झिक-झिक है, होती रहती है, वह कहते हैं, मैं सुनती हूं।'

नीलिमा ने उम्मिया घोष की सुराहीदार गरदन पर एक लम्बी सी खराश का निशान देखा और क्रोध में बोली 'जंगली! देखो तो कितने जोर का हाथ मारा है।'

उम्मिया घोष ने मुस्कराकर कहा 'नहीं, हाथ तो इतने जोर का नहीं पड़ा। वह हाथ में सोने की अंगूठी पहने थे, इसीसे यह जगह छिल गई।'

प्रतिभा ने पूछा 'फिर तू आज कैसे आ गई?'

उम्मिया घोष ने कहा 'देखती नहीं हो, किसी की शादी में शामिल होने के लिए वस्त्र पहन रखे हैं। दो दिन हुए मैंने घर पर एक फर्जी सहेली की शादी का निमन्त्रण-पत्र मंगवा लिया था। अब क्या पतिदेव सहेली की शादी में जाने से भी रोकेंगे?'

प्रतिभा और उम्मिया घोष एक-दूसरी की बाहों में बाहें डालकर जोर-जोर से हंसने लगीं।

इंडियन एसोसियेशन हाल औरतों से भरा पड़ा था। दीवारों पर बड़े-बड़े बैज लगे हुए थे जिन पर लिखा था—

'सिक्योरिटी ऐक्ट के कैदियों को रिहा कर दो या उनपर मुकद्दमा चलाओ।'

'हड़तालियों की मांगें पूरी करो।'

'राजनैतिक कैदियों के साथ मानवों का सा वर्ताव करो।'

'राजनैतिक नज़रवन्दों को रिहा करो।'

'बी० सी० राय का बङ्गाल टैगोर का बङ्गाल नहीं। हम मज़दूर किसान राज्य चाहते हैं, पुलिस राज्य नहीं चाहते।'

उर्म्मिया घोष बोली 'और एक बैज यह भी चाहिए—पुलिस राज्य और रामराज्य में क्या फर्क है? ठीक उत्तर देने वाले को नोबल प्राइज़ दिया जाएगा।'

यह बात सुनकर आस-पास की बहुत सी औरतें हंस पड़ीं। लतिका ने नज़र दौड़ाकर चारों ओर देखा। आज कामगार औरतें विशेष रूप से इस जलसे में अधिक आई थीं। सारा हाल खचाखच भरा हुआ था। लतिका ने घड़ी देखी। जलसे की कार्रवाई अब तक शुरू हो जानी चाहिए थी। लतिका और प्रतिभा को आते देखकर स्टेज पर से एक लम्बे कद वाली बूढ़ी-सी औरत उठी और हल्के-हल्के कदमों से चलते हुए लतिका के पास आ गई और सख्त स्वर से कहने लगी, 'बहुत देर कर दी।'

लतिका क्षमा मांगने लगी।

बूढ़ी स्त्री ने कहा 'हम लोग तो घर भी नहीं गए, मिल बन्द होते ही सीधे इधर आ गए। तुम्हें कौनसा मिल में जाना था?'

लतिका और प्रतिभा ने फिर क्षमा मांगी, 'रज़िया बहिन, क्षमा कर दो ना।'

रज़िया मुस्कराई, बोली 'चलो अब जल्दी से शुरू कर दो, हमें तुम्हारा ही इन्तज़ार था।'

रज़िया प्रधान चुनी गई। लतिका ने समाजवादी नज़रबन्दों की मांगों को पूरा करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया और बड़े जंचे-तुले स्वर

में एक छोटा-सा भाषण दिया। उसके बाद प्रतिभा ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए आध घण्टे तक एक जोशीला भाषण दिया और प्रस्ताव तालियों की गूंज से पास किया गया।

सब औरतें खड़ी होकर तालियां बजा रही थीं और नारे लगा रही थीं कि इतने में किसी ने रज़िया के लिए कागज़ का एक पुर्ज़ा भेजा। रज़िया ने उस औरत को उसी समय स्टेज पर बुलवा लिया। यह एक पीली-सी दुबली-पतली स्त्री थी जिसके गाल भीतर पिचक गए थे। चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं और बाल उलझ-उलझकर वायु में उड़े जा रहे थे। वह जल्दी-जल्दी अपने काले दुपट्टे का पल्लू संभालती भागती हुई आई और धम से स्टेज पर आकर कहने लगी, 'बहनो! आपने यह पास कर दिया, यह तो बड़ी अच्छी बात की, लेकिन मैं आपको एक बात बताने यहां आई हूं।'

वह एकाएक चुप हो गई। हाल में बातें बन्द हो गईं। सब उस औरत की ओर देखने लगीं। वह बोली, और अब उसके स्वर में घबराहट नहीं थी। 'मेरा पति एक कामगार है, वह जूते के कारखाने में काम करता है। वह कई वर्षों से सुर्ख साथी है, कई हड़तालों में उसने भाग लिया, कांग्रेसियों के साथ जेल भी गया। खैर, जेल जाना उसके लिए कोई नई बात नहीं है, जैसे भूखे रहना हम निर्धनों के लिए कोई नई बात नहीं है।'

वह चुप हो गई। लतिका को लगा जैसे किसीने उसका दिल पकड़ लिया हो। सारे हाल में सन्नाटा था।

वह औरत फिर बोली, 'लेकिन पहले अपने नेता लोग पूंजीपतियों के विरुद्ध हड़ताल करने को बुरा नहीं समझते थे, मैं पूछती हूं वे अब इसे बुरा क्यों समझते हैं? कुछ लोग आजकल कहते हैं कि पूंजीपति भी आखिर हमारे भाई हैं। मैं कहती हूं तो क्या वह पहले हमारे भाई नहीं थे? अब क्या हुआ?'

एक औरत बोल उठी, 'अब वे तुम्हारे भाई नहीं हैं। अब वे दामाद हैं दामाद!'

इसपर सारा हाल हंसने लगा और तालियां बजने लगीं। रज़िया ने कठिनतापूर्वक चुप कराया। वह औरत बड़े क्रोध में आकर कहने लगी, 'भाई हों या दामाद, वे पहले भी कारखानेदार थे, हम पहले भी मज़दूर थे। आज भी वे कारखानेदार हैं, हम आज भी मज़दूर हैं। मेरा पति पहले भी हड़ताल कराता था, वह आज भी कराएगा। उसे आज यह अधिकार क्यों नहीं पहुंचता है ? आज उसे जेल में क्यों ठूंस दिया गया है ? और फिर उसपर मुकद्दमा भी नहीं चलाया जाता। अंग्रेज़ों के समय में उसे दो-तीन बार सज़ा हुई थी लेकिन हर बार उसे अदालत ने सज़ा दी थी। कुछ मोटों ने झूठे-सच्चे बयान दिए थे। वकीलों में बहस हुई थी। अब क्या है ? न वकील हैं न गवाह हैं, न मुकद्दमा है न दफा है, न कानून है, केवल जेल की सलाखें हैं।

वह औरत एक क्षण के बाद पुनः बोली, 'पिछले सात दिन से हमारे घर राशन नहीं था, क्योंकि अब घर में कोई कमानेवाला नहीं है। मुझे दो महीने से बार-बार बुखार आता था। इसलिए मिलवालों ने मुझे निकाल दिया। घर में जो कुछ था वह थोड़ा-थोड़ा करके हमने बेच दिया। फिर मेरे पास था ही क्या ? कल रात को मेरा बेटा भूख से बिलक-बिलककर मर गया। घर में कुछ नहीं था। कई दिन से नहीं था। मैं अभी अपने बच्चे को दफन करके आ रही हूं। सीधी यहीं आ रही हूं, ताकि अपना काला दुपट्टा अपनी बहनों के सामने फैलाकर उनसे पूछ लूं, क्या यह प्रस्ताव काफी है ? यदि सचमुच यह प्रस्ताव काफी है तो इसकी एक नकल मुझे दे दी जाए ताकि मैं इसे अपने नन्हे बेटे की कब्र पर लगा दूं।'

हाल का सन्नाटा एकदम टूट गया। जैसे किसीने बन्द तोड़ दिया हो। बहुत-सी आवाज़ें एकदम गूंजने लगीं :—

'नहीं, नहीं।'

'यह काफी नहीं है !'

'हरगिज़ हरगिज़ यह काफी नहीं है !!

वहुत-सी औरतें खड़ी होकर चिल्ला रही थीं। इतने में एक औरत, एक नौजवान कामगार औरत, जिसने लहंगा पहन रखा था और जिसकी चुटिया क्रोध के मारे एक विफरी हुई नागन की तरह हरकत कर रही थी, धम से स्टेज पर कूद गई और बाहें फैलाकर बोलने लगी, 'काफी नहीं है तो उठो, आगे वढ़ो······कलकत्ते की शेरनियो, क्या तुम अपने भाइयों, पतियों को यूं जेल में भूखा मर जाने दोगी? उठो! अभी जलूस निकालकर चलो, जेल की ओर। आज हम इनकी मांगें पूरी करके वापस आएंगी।'

'हां, हां, यह ठीक है।' वहुत-सी औरतें एकदम हल्ला करने लगीं। तालियां वजने लगीं। जलूस निकालने की तजवीज़ सवको पसन्द आई थी। चारों ओर हंगामा-सा मच गया। रज़िया को वहुत क्रोध आया। उसने ज़ोर से दो-तीन वार मेज़ पर हाथ मारकर औरतों को चुप कराया।

एक औरत वोली, 'कॉमरेड प्रैज़िडैंट।'

रज़िया वोली, 'तुम्हारी ऐसी-तैसी, चुप रहो, नहीं तो उठाकर हाल से वाहर फेंक दूंगी।'

दूसरी वोली, 'मुझे भी वोलने का अधिकार है।'

रज़िया वोली, 'तुम कौन हो जी? क्या महिला संघ की मेम्बर हो?'

'नहीं, मैं मेम्बर नहीं हूं' वह औरत वोल रही थी। और लतिका ने देखा कि वह भूरे रंग की वड़ी कीमती साड़ी पहने हुए है। अधेड़ आयु की मोटी-ताज़ी औरत! माथे पर कुमकुम सज रहा था। वांहों में सोने की चूड़ियां थीं। उसी औरत ने वड़े तीखे स्वर में कहा, 'मैं मेम्बर तो नहीं हूं लेकिन आम जलसे में वोलने का मुझे भी अधिकार है और मुझे इसलिए भी विशेष रूप से आज्ञा दी जाए क्योंकि मैं आपके प्रस्ताव का विरोध करना चाहती हूं।'

रज़िया ने उठकर कहा, 'एक महिला इस प्रस्ताव का विरोध करना चाहती हैं।'

'हां! हां!!' फिर एकदम शोर मचा। दूसरे क्षण में सव औरतें

हाथ-पांव वाली औरत उठकर कहने लगी 'मैं आप बहनों से कहती हूं कि मैं इस औरत के पति महाशय को जानती हूं। वह गांधी टोपी नहीं, हैट पहनता है, हैट !'

'तुम कैसे जानती हो ?' एक लड़की बोली।

उस काली औरत ने अपने दोनों हाथ अपने कूल्हों पर रख लिए और क्रोध भरे स्वर में बोली, 'इसका पति हमारे मुहल्ले में रहता है। वह पुलिस सब-इन्स्पेक्टर है। अभी पिछले मंगल को उसने मेरे बेटे को लाल झंडे वाला समझकर अन्दर धर लिया।'

'हाय !' प्रतिभा चिल्लाई 'यह पुलिस इंस्पेक्टर की पत्नी है और यहां सी० आई० डी० का काम करने आई है—निकल यहां से !' प्रतिभा ने इन्स्पेक्टर की पत्नी को गरदन से पकड़ लिया।

मनोरमा ने व्यंगपूर्वक कहा 'जाने दे बहिन ! इस बेचारी की तो राजनैतिक नज़रबन्दों से पूरी-पूरी सहानुभूति है। यह तो बस जलूस निकालने का विरोध करती है।'

'अहा !' क्या सहानुभूति जताई है कम्बख्त ने !' एक बूढ़ी औरत बोली, जिसके सिर के बाल आधे से अधिक श्वेत हो चुके थे और जिसका सिर सदैव धीरे-धीरे हिलता रहता था। लतिका को उसकी बोल-चाल से लगा कि वह उत्तरी भारत की रहने वाली है।

इतने में हाल की बहुत-सी औरतें पुलिस इन्स्पेक्टर की पत्नी के गिर्द एकत्रित हो गईं और हो सकता था कि उसकी ठुकाई भी हो जाती, लेकिन उसी समय रज़िया ने बड़ी चतुरता से काम लेकर सबको ठंडा किया और बीच-बचाव करके उस औरत को जल्से से बाहर निकाला। जब वह जल्से से बाहर निकाली जा रही थी तो वह अत्यन्त घबराई हुई थी। उस परेशानी की हालत में उसकी साड़ी से एक पिस्तौल भी नीचे गिर पड़ा।

'ऊं हूं ! उम्मिया घोष ने पिस्तौल उठाकर कहा 'कम्बख्त पूरा प्रबन्ध करके आई थी नज़रबन्दों के हित के लिए।'

उम्मिया घोष अपने बटुए में पिस्तौल इस प्रकार रखने लगी जैसे वह लिपस्टिक हो कि लतिका ने पिस्तौल उससे छीनकर जासूस औरत की ओर फेंक दिया और बोली 'यह भी लेती जा, नहीं तो फिर कल-कलोतर को अपने अखबारों में छपवाएगी कि राजनैतिक नज़रबन्दों की हितैषियों की तलाशी पर पिस्तौल निकले।'

जब लतिका और उम्मिया घोष इन्स्पेक्टर की पत्नी को जल्से से निकालकर दूर तक पहुंचा आईं तो उन्होंने देखा कि बहुत-सी औरतें अपनी साड़ियों के पल्लू कसकर बांध रही हैं। कुछ औरतें बैज उठा रही हैं। रज़िया के हाथ में झंडा था। एक झंडा उस काली-भुजंग औरत के हाथ में भी था जिसने पुलिस इन्स्पेक्टर की पत्नी को पहचाना था। कुछ स्त्रियां हाल के कोने में पड़े हुए मटके के पानी से अपने पल्लू भिगो रही थीं।

नीलिमा बोली 'यह किस लिए?'

रज़िया ने कहा 'जब आंसू लाने वाली गैस चलेगी तो यह भीगा हुआ पल्लू आंखों पर रख लेने से कष्ट कम होगा। इस तरह आंखों की जलन भी बहुत कम हो जाती है।'

प्रतिभा ने पूछा 'और अगर गैस न चली, गोली चली तो?'

उम्मिया घोष बोली 'गोली नहीं चलेगी। अगर गोली चलेगी तो मैं आगे हो जाऊंगी और मेरे गहने-लत्ते देखकर पुलिस वाले ज़रूर यह समझेंगे कि मैं जलूस में नहीं जा रही, मनोरमा के व्याह की बारात में जा रही हूं, क्यों मनोरमा?'

'हट पगली' मनोरमा ने कहा।

नीलिमा का चेहरा गम्भीर हो गया, बोली 'गोली चल तो सकती है।'

उम्मिया भी गंभीर होकर कहने लगी 'नहीं चल सकती, यह टैगोर का बंगाल है। यहां स्त्रियों पर गोली चलाने की किसमें हिम्मत है?'

लतिका बोली 'नीलिमा सखी, तू खड़े-खड़े क्या सोच रही है ?'

नीलिमा बोली 'लतिका, शायद यह हमारी अन्तिम मुलाकात है।'

लतिका बोली 'पगली हुई है ? मैं तो इतनी आसानी से मरने वाली नहीं हूं।'

उत्तरी भारत की रहने वाली बूढ़ी औरत दरवाज़े पर खड़ी हो गई, जहां से औरतें बाहर गुजर रही थीं। उसके हाथ में छोटी-सी डिबिया थी जिसमें सेंदूर भरा हुआ था। वह रास्ता रोककर कहने लगी, उसका सिर धीरे-धीरे हिल रहा था 'मेरी बेटियो, आओ मैं तुम्हें सेंदूर का टीका लगा दूं, यह हमारी जीत का सुर्ख निशान है। आज तुम्हारी जीत होगी बेटियो।'

लतिका ने सिर झुका दिया। दूसरे क्षण में सुर्ख टीका उसके माथे पर चमक रहा था।

माथों पर सुर्ख टीके चमकने लगे। वायु में लाल झण्डे झुलते गए, एकाएक प्रतिभा ने 'इंटरनैशनेल' शुरू किया।

इंटरनैशनेल गाती हुई औरतें इण्डियन एसोसिएशन हाल से निकलकर जलूस की सूरत में ग्रे बाज़ार में आ गई और चार-चार की पंक्ति में कालेज स्ट्रीट की ओर बढ़ने लगीं। आगे-आगे रज़िया थी और वह काली-भुजंग, और उनके पीछे लतिका और नीलिमा और प्रतिभा और मनोरमा। गीता सरकार और उर्म्मिया घोष उनके पीछे आ रही थीं। लतिका ने एक नज़र पीछे डालकर देखा। जलूस बड़ी विधिपूर्वक आगे बढ़ रहा था और उसके इनक़लाबी नारे वातावरण में गूंज रहे थे; लतिका ने देखा कि बाज़ार के वातावरण में जैसे बिजली-सी सनसना गई हो। कुछ लोगों में भय-सा फैल गया और वे इधर-उधर भागने लगे; बहुत-से लोगों ने औरतों के साहस की सराहना करनी शुरू की, जिन्होंने अपनी जान पर खेलकर १४४ दफा के होते हुए जलूस निकालकर [illegible]-हड़तालियों से अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। बहुत-से अमीर [illegible] अपनी दुकानें बंद करने लगे। कुछ रास्ता चलने वाले सड़क छोड़कर [illegible]

गलियों में घुसते गए। कुछ जलूस के साथ आते गए। वो बाज़ार के ऊंचे बालाखानों में कुछ स्त्रियां मेक-अप किए हंस रही थीं। एक ट्राम बिजली का तार रगड़ती हुई आगे निकल गई। लतिका चलते-चलते देर तक उस बिजली के तार को देखती रही। एकाएक चौराहे पर उस तार से एक शोला उत्पन्न हुआ और वह सिहर उठी। वातावरण उस समय बिलकुल बनावटी-सा दिख रहा था। कदम आगे बढ़ रहे थे। ज़बान पर गीत के जोशीले बोल थे लेकिन उन बोलों के भीतर और बाहर जैसे उन्हें काटते हुए, उनके आगे-पीछे झांकते हुए कई विचार आते-जाते एक दूसरे से टकराकर गडमड होते जा रहे थे······चाची के चेहरे पर एक भूरे रंग का मस्सा कितना अच्छा मालूम होता है············मैं आज अपने पति से क्यों नहीं मिली···ट्राम का तार कैसे भागता जा रहा है···नीलिमा की नाक······मैं आज अपने पति से मिल आती तो अच्छा होता··· गोली चल सकती है······नहीं चल सकती······चल सकती है······ नहीं चल सकती······वह जीप-कार आ रही है !—और लतिका के विचार जीप से चिपक गए। अब उसके मस्तिष्क में कुछ नहीं था। सामने से जीप आ रही थी। जीप के ऊपर लासकली का यंत्र लगा हुआ था और जीप में पुलिसमैन बैठे हुए थे और जलूस आगे बढ़ रहा था और सामने से जीप आ रही थी और निकटतर आती जा रही थी और जीप में पुलिस के सिपाही थे जिनके हाथों में राइफलें थीं। और जीप आगे बढ़ रही थी और जलूस आगे बढ़ रहा था और लतिका के सारे विचार, उसका मस्तिष्क, उसका दिल, उस जीप के साथ चिपक गए थे। एकाएक जीप जलूस से कुछ दूरी पर रुक गई और लतिका को एक धचका-सा लगा। और एकाएक उसे ख्याल आया कि मैंने आज मुन्ने की नीकर धुलने को नहीं दी और फिर जैसे उसके आगे लतिका को कुछ याद न रहा। जैसे मस्तिष्क पर से कांच का उजला स्तर छन्न-से टूट गया। और अब वह उस टूटे हुए कांच के छिद्र में से बाहर देख रही थी।

पुलिस ने जलूस का रास्ता रोक लिया था और एक अफसर कह

गोली सनसनाती हुई रज़िया के पास से निकल गई। रज़िया ज़मीन पर लेट गई।

सारा जलूस ज़मीन पर लेट गया। बालाखानों के दरीचे बन्द होने लगे। चीत्कार की आवाज़ें आने लगीं। फिर एकदम सन्नाटा छा गया। वायु में केवल गोलियों की आवाज़ सनसनाती हुई मालूम होती थी।

नीलिमा गरदन झुकाए हुए ज़मीन के साथ लगी अपनी आंखों, माथे और कानों को हाथों से ढांपे गली के कोने की ओर घिसट रही थी। उसका हाथ उम्मिया घोष के हाथ में था। वह हाथ पहले चल रहा था फिर रुक गया, वह हाथ पहले गर्म था फिर ठंडा पड़ गया। नीलिमा ने हाथ छोड़ दिया। किसीकी बारात गुज़र गई। उम्मिया! नीलिमा आगे घिसटने लगी। आगे जाकर वह फिसल गई और उसके दोनों हाथ किसीके रक्त से लथड़ गए। नीलिमा ने हल्की-सी चीख मारकर देखा, प्रतिभा मरी पड़ी थी और उसके पल्लू में बंधे हुए शलजम निकलकर लहू में भीगे हुए थे। शलजम और मछली का शोरबा! प्रतिभा! तू आज अपने पति महाशय को क्या खिलाएगी? नीलिमा आगे घिसटने लगी। एक गोली ज़न से आई और कोई उसके पीछे ज़ोर से चीखा। क्षणमात्र की लम्बी चीख जहां जीवन समाप्त हो जाता है और मृत्यु शुरू होती है। यह गीता सरकार थी। गोली उसके भेजे को चीरकर पार हो गई थी। निकट ही एक नौजवान लड़का मरा पड़ा था। पालिश की डिबिया और बुरुश उसके हाथ में था। एकाएक नीलिमा के दांत बजने लगे और उसके मुंह से चीखें निकलने लगीं। रज़िया भागती हुई उसके पास आई 'क्या है?' उसने पूछा 'तुम्हें कहां चोट आई है?'

नीलिमा घबराकर उठी। जलूस छट गया था। कुछ लाशें ज़मीन पर पड़ी थीं, कुछ लोग कराह रहे थे। कई एक ने नालियों के निकट या दुकानों की सीढ़ियों के नीचे पनाह ली थी।

पुलिस वाले अब हटकर ज़रा दूर खड़े थे। सारे बाज़ार में सन्नाटा था।

नीलिमा ने पूछा 'क्या हुआ ?'

रज़िया बोली 'अब सब कुछ हो चुका, चलो लतिका के पास।'

नीलिमा ने अपने आप को देखा। उसे कहीं चोट नहीं आई, इस पर वह बहुत हैरान सी हो गई।

रज़िया के बाज़ू से एक गोली छिछलती हुई गुज़र गई थी।

रज़िया और नीलिमा लतिका के पास पहुँची, जो धीमे-धीमे स्वर में पड़ी कराह रही थी। उसके पास ही मनोरमा औंधे मुंह पड़ी थी। अपने हाथ कानों में दिए।

नीलिमा ने कहा 'उठो मनोरमा, उठो ! देखो लतिका कराह रही है। आओ इसे उठाकर ले चलें।'

रज़िया ने कहा 'किसे उठाती हो। मनोरमा तो अब नहीं उठेगी। अब तो वह किसी की नहीं सुनेगी।'

नीलिमा ने धीरे से मनोरमा के हाथ उसके कानों से अलग किए। एक कर्णफूल उसके कान से अलग होकर नीलिमा के हाथ में आ गया। मनोरमा सचमुच सो रही थी। उसकी छाती में एक गहरा घाव था। उसकी आंखें बंद थी। उसके ओंठ सूखे हुए थे और उसकी कंवारी छातियों में किसी ने ममता के सोते सुखा दिए थे।

'हाय ! हाय !' लतिका धीरे से कराही।

रज़िया और नीलिमा ने चारों ओर देखा। सन्नाटा, निस्तब्धता.... जैसे वायुमंडल ने अपना श्वास रोक लिया हो और धरती ने अपने केन्द्र के गिर्द घूमना छोड़ दिया हो।

जूतों की एक दुकान के ऊपर बालाखाने में से एक बूढ़ा चीनी झांक रहा था। रज़िया ने उसे नीचे आने को संकेत किया। बूढ़े चीनी ने ध्यान से नीचे देखा। उसकी दुकान तो बंद थी। वह भीतर से होकर बाहर न जा सकता था। बालाखाने से सड़क पर आने के लिए एक सीढ़ी अवश्य थी, लेकिन यह सीढ़ी बाहर दीवार से लगी थी और दीवार नंगी थी और पुलिस वालों की ज़द में थी। कहीं कोई पनाह न थी।

बूढ़ा चीनी सीढ़ी से घिसटता-घिसटता मकड़ी की तरह लगा-लगा, दीवार टटोलता नीचे उतर आया। नीचे उतरकर उसने जल्दी से दुकान खोली और फिर नीलिमा और रज़िया की सहायता से वह लतिका को उठाकर दुकान के भीतर ले आया।

सिपाही दूर खड़े तमाशा देख रहे थे।

बो बाज़ार के बालाखानों के ऊंचे दरीचों में औरतें खड़ी-खड़ी रोने लगीं।

जलूस फिर जागने लगा। औरतें जमीन पर से उठकर घायलों की देख-भाल करने लगीं और अपने साथियों की लाशें देखने लगीं।

गीता सरकार

मैं गीता सरकार हूं। मेरी आयु अठारह वर्ष की है। मेरे माता-पिता बहुत निर्धन हैं। इसलिए मुझे मालूम है कि निर्धनता क्या होती है। मैं आर० जी० कारमायकल कालेज में एक नर्स हूं। मुझे एक लड़के से प्रेम है। उसका नाम अजीत बोस है। वह अगले वर्ष डाक्टरी की परीक्षा पास कर लेगा। फिर हम दोनों की शादी हो जाएगी।

'तड़ाख!'

उम्मिया घोष

मैं हंसने वाली रंगीली चिड़िया हूं जो सावन के बादलों में उड़ती है और आकाश की नीली झील के सपने देखती है और रात को अपने छोटे से घोंसले में बैठकर अपने दोनों बच्चों का दायें-बायें सुलाकर, अपनी बाहें फैलाकर सो जाती है। बच्चे कितने प्यारे होते हैं। घोंसला कितना सुखदायक होता है। आज मैं अपने दोनों बच्चों को एक अच्छी-सी कहानी सुनाऊंगी और वे मेरी नर्म-गर्म छाती से लगे किस प्रकार अपनी मासूम आंखें खोले मेरी कहानी सुनेंगे और कहानी सुनते-सुनते सो जाएंगे।

'तड़ाख!'

मनोरमा

मैं जलसे से निपटकर तुम्हें ६ बजे ओडियन सिनेमा के बाहर मिलूंगी। नहीं, हम तैरने वाली नंगी औरतों की रंगीन फिल्म नहीं देखेंगे। हम चार्ली चैपलन की फिल्म देखेंगे जो दया और सदाचार का देवता है और अगले हफ्ते जब हमारी शादी हो जाएगी तो हम फिर यही फिल्म देखेंगे और उसके बाद वर्दवान जाएंगे जहां तुम्हारा घर है, जिसके आंगन में तुलसी का पेड़ है और पंजतारे का भी। वहां हम चांदनी रातों में एक दूसरे के हाथ में हाथ दिए घंटों चुपचाप बैठे रहेंगे और उस आने वाले बच्चे की कल्पना करेंगे जिसकी सुगंधि में तुलसी का पौदा महकता है। मैं जलसे से निपट कर ६ बजे तक अवश्य ओडियन सिनेमा के दरवाज़े पर पहुंच जाऊंगी, मेरा इन्तज़ार करना।

'तड़ाख!'

प्रतिभा गंगोली

गुज़र भी जा कि तेरा इन्तज़ार कब से है।

यह हम दोनों का बेटा है। हम दोनों निर्धन हैं। इसके लिए कुछ नहीं कर सके। लेकिन इस बेटे का भविष्य बहुत धनवान है। क्योंकि वह उस युग का बेटा है जो हमारी आशाओं की किरण है। वह कांपती हुई प्रसन्नता की किरण सामने से आ रही है......गुज़र भी जा कि तेरा इन्तजार कब से है।

'तड़ाख!'

पालिश वाला

मेरा कोई नाम नहीं है। मेरे बाप का कोई नाम नहीं है। मेरी मां का कोई नाम नहीं है। मैं कलकत्ता की अंधेरी गलियों की पैदावार हूं। मैं निर्धनता और पूंजीवाद के आतशिक की संतान हूं। यह आतशिक आज भी कलकत्ते की आत्मा को एक जोंक की तरह चूस रही है। मैं बूट पालिश करता हूं। लोग चेहरे चमकाते हैं, मैं बूट चमकाता हूं। लोग

चेहरे पढ़ते हैं, मैं बूट पढ़ता हूं। मैं ठोकरों में रहता हूं। फुट-पाथ पर सोता हूं और होटलों का जूठा खाना खाता हूं।

मेरा कोई नाम नहीं है। वास्तव में मैं यूंही इन लड़कियों को बचाने आ गया था। मुझे इस जलूस का कुछ ज्ञान नहीं है कि यह क्या है? किधर जा रहा है? मैं बस इतना जानता हूं कि जब स्त्री पर गोली चलती है तो पुरुष सामने आ जाता है। क्योंकि स्त्री पुरुष की मां है और मां को बचाना हर बेटे का कर्तव्य है, चाहे उस बेटे को कोई मां अपना बेटा कहकर न पुकारे।

मेरा कोई नाम नहीं है। मैं शायद वह मामूली बेनाम कवि हूं जो हर शताब्दी में अत्याचार के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया है। मैं शायद वह बेनाम सिपाही हूं जो हर महाज़ पर, हर मोरचे पर, हर युद्धभूमि में अमर हुआ है। मैं शायद वह महापुरुष हूं जिसके देवताओं-जैसे सदाचारी और मेहनती हाथों में क्रांति की पताका लहराती है।

मेरा कोई नाम नहीं। मैं शायद यहां अपनी मां को ढूंढने आया था।

'तड़ाख!'

चीनी बूढ़े की दुकान में नीलिमा ने लतिका का सिर अपनी गोद में लेकर पूछा 'अब कैसी हो लतिका?' लतिका के चेहरे पर चाची ऐसी मुस्कराहट आई, बोली, 'अच्छी हूं, पेट में मामूली-सा दर्द है।'

रज़िया ने कहा, 'अभी एम्बुलैंस आती होगी। बूढ़े चीनी ने, भगवान् उसका भला करे, अभी एम्बुलैंस के लिए टैलीफ़ोन किया है।'

बूढ़ा चीनी इतने में दुकान के भीतर से एक रोटी ले आया। बोला, 'इस रोटी को पेट पर रख दो।' रज़िया बोली, 'इससे क्या होगा?'

बूढ़ा हाथ मलते हुए बोला, 'इससे कुछ नहीं होगा, लेकिन मैं क्या करूं...क्या करूं....कुछ समझ में नहीं आता।'

रज़िया बोली, 'चुपके बैठे रहो, एम्बुलैंस आती होगी।'

बूढ़ा थोड़ी देर के लिए चुप रहा। फिर कहने लगा, 'यह च्यांग, यह सब उसी च्यांग की बदमाशी है। मैं सब जानता हूं।'

रज़िया ने कहा, 'कैसी बावलों की-सी बातें कर रहे हो, यहां कहां तुम्हारा च्यांग आ गया?'

बूढ़ा चीनी हाथ मलते हुए बोला, 'वही होगा! तुम नहीं जानतीं। मैं सारी दुनिया में घूमा हूं। हर देश में च्यांग है, छोटा च्यांग, फिर उससे बड़ा च्यांग, फिर उससे भी बहुत बड़ा च्यांग'····चीनी बूढ़े ने हाथ फैलाकर बहुत बड़े च्यांग का डील-डौल बताते हुए कहा, 'और ये सब च्यांग मिलकर हमें लूटते हैं, हम पर गोली चलाते हैं।'

बूढ़ा चुप हो गया। लतिका धीरे-धीरे कराहती रही······कान में क्लाक टिक्-टिक् करता रहा।

बूढ़ा फिर बोला, 'इन सब च्यांगों को खत्म करना होगा। और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। केवल पीपिंग का रास्ता है जहां हमारी फौजें खुशी के शादियाने बजाती हुई दाखिल हुई हैं' यह कहते-कहते बूढ़े के शोकातुर चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। पीपिंग का नाम सुनकर लतिका के चेहरे पर एक विचित्र-सी मुस्कराहट आई। बोली, 'अब कितनी देर है?'

रज़िया बोली, 'आ रही है······लो वह आ गई।'

एक एम्बुलैंस दुकान के सामने आकर रुकी।

रज़िया ने कहा, 'लतिका! तुम घबराओ नहीं। अब तुम बच जाओगी।'

लतिका ने बड़े संतोष के साथ कहा, 'हां, मैं जानती हूं, मैं नहीं मरूंगी।'

एम्बुलैंस लतिका को लेकर चल दी।

रज़िया ने गिरा हुआ झंडा उठा लिया। यह झंडा इतना लाल क्यों था? क्यों इतना चमक रहा था? उस चमक में इतना भरपूर क्रोध क्यों

था ? उस काली-भुजंग औरत ने उम्मिया घोष की लाश को अपने कंधे पर उठा लिया। चार मज़दूर स्त्रियों ने उस नौजवान लड़के की लाश को अपने हाथों में उठा लिया। बाकी लाशें भी उठा ली गईं। जलूस फिर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। दुकानें खुलती गईं। लोग क्रोध में बातें करने लगे। जलूस बढ़ता गया और बड़ा होता गया। झंडा वायु में खुलता गया—जैसे कलकत्ता की जकड़ी हुई आत्मा अपनी बेड़ियां काट-कर उस जलूस में शामिल हो रही हो। लोग-बाग दस, बारह, पन्द्रह, बीस, सौ, हज़ार-हज़ार की गिनती में आकर उस जलूस में मिलते गए और जोशीले नारे—घृणा और क्रोध से भरे हुए नारे—लगाते गए। अब किसी को गोली का, दफ़ा १४४ का, भय नहीं रहा। स्त्रियों ने शहीदों का रक्त अपने माथे पर लगा लिया और छाती तानकर आगे बढ़ने लगीं और पुलिस के सिपाही पीछे हटने लगे। जलूस आगे बढ़ता गया—कलकत्ते के बाज़ारों में, कलकत्ते की गलियों में, कलकत्ते के कूचों में। लोग सिनेमा-घरों में से निकल आए। कारखानों में से निकल आए। क्लर्क, विद्यार्थी, दुकानदारों, मज़दूरों के नेतृत्व में आगे बढ़ते गए। जलूस आगे बढ़ता गया—जेलखाने की ओर। अब जनता बाहर निकल आई थी और जालिम धरती के नीचे खंदकों में छुप गए थे।

एम्बुलैंस भागी जा रही थी। उसका भोंपू ज़ोर-ज़ोर से बार-बार झल्लाहट से चिल्लाता और हर बार लतिका को उस आवाज़ से अत्यंत कष्ट होता। यह शोर किसलिए है ? यह मेरे पेट में एकाएक हज़ारों गोलियां-सी क्यों चलने लगी हैं ? ये शोले क्यों रग-रग में और नस-नस में भड़क रहे हैं ? ये नश्तर से क्या चल रहे हैं, जैसे कोई शरीर के हर अंग को गोदे डालता हो। दर्द की लहरें पेट में उठती हैं, घूमती हैं। भंवर, दायरे, आग के शोले, भूचाल, जलता हुआ लावा, मेरे राम ! क्या इसी को मृत्यु कहते हैं जैसे शरीर के हर अंग में छाले उबल आएं।

एम्बुलैंस भागी जा रही थी। उसकी लोहे की जालियों के बाहर जीवन था। लतिका ने अभिलाषा-पूर्ण नज़रों से बाहर झांका। एम्बुलैंस

एक पांच मंज़िला इमारत के सामने से गुज़र रही थी। लतिका ने देखा, खिड़कियों में रंगीन पर्दे लहरा रहे थे। दो लड़के सिग्रेट पीते हुए बाल-कोनी पर झुके हुए हंस रहे थे। एक दर्ज़ी गुलाबी साटन का ब्लाउज सी रहा है···मां बच्चे को लिए खिड़की में खड़ी है। बच्चा हुमकता है और मुस्करा देता है····ऊपर आकाश गहरा नीला है—लतिका ने आंखें बन्द कर लीं। जैसे उसके मरते हुए शरीर और आत्मा को शान्ति मिल गई और उसके दिल में शांति की घंटियां बजने लगीं। मृत्यु कुछ नहीं है। जीवन ही सब कुछ है। मृत्यु कुछ नहीं है, बच्चे की मुस्कराहट ही सब कुछ है। उस एक क्षण में लतिका ने दूर खिड़की में खड़ी हुई मां की गोद में से जैसे उस बच्चे को अपनी गोद में ले लिया और उसे चूम-कर उसी क्षण उसकी मां के हवाले कर दिया। जीवन से मृत्यु और मृत्यु से जीवन की ओर····

लतिका सेन अपने जीवन के अंतिम क्षणों में भी ऊषा की पहली किरण की तरह मुस्कराई।

मोर्ग!

मोर्ग में छः लाशें पड़ी थीं

१—लतिका सेन!

२—उम्मिया घोष!

३—प्रतिभा गंगोली!

४—गीता सरकार!

५—मनोरमा!

६—एक बेनाम लड़का!

ये छः की छः लाशें मोर्ग में नंगी पड़ी थीं। उनके शरीर पर कोई कपड़ा न था और मोर्ग के कर्मचारी, मनुष्य के भेष में गीदड़ और गिद्ध जो सड़े हुए समाज के भीतर सड़े हुए मांस का व्यापार करते हैं, उन लाशों के संबंध में अपने विशेष गंदे घिनावने ढंग से बातें कर रहे थे, मज़ाक कर रहे थे, उन्हें अपने गंदे व्यंग का निशाना बना रहे थे।

'साली अच्छी है।'

Discovery of India.

'कैसी गोल-गोल और गुलगुली है।'

Bardoli

'ज़रा इसका शरीर तो देखो, हाय, क्या मास्टरपीस लौंडिया है !'

My Experiments with Truth.

'इसका मांस अभी तक गरम और नरम है।'

Satyameva Jayate.

नीलिमा ने जो अब अपनी नर्स की ड्यूटी पर वापस आ गई थी, नज़र ऊपर उठाकर देखा। आकाश नंगा था। धरती नंगी थी, सूरज की किरनें नंगी थीं और सीता और सावित्री के शरीर नंगे थे और मोर्ग से वहुत दूर कहीं हज़ारों मील परे वाल्ड रूफ एस्टोरिया होटल के शानदार लाउंज में मिसेज़ विजयलक्ष्मी पण्डित कह रही थीं, 'भारत में समाजवाद कभी नहीं आ सकता और इस वात का प्रमाण यह है कि भारत की केन्द्रीय एसेम्वली में समाजवादियों का एक भी प्रतिनिधि नहीं है।' समाजवादियों के प्रतिनिधि वेशक केन्द्रीय एसेम्वली में नहीं हैं लेकिन वे यहां कलकत्ते के मोर्ग में अवश्य मौजूद हैं। कलकत्ते की जेलों में कैद हैं। फांसी के तख्ते पर लटक रहे हैं। वाल्ड रूफ एस्टोरिया होटल का अमरीकी फ्वायर वहुत सुन्दर है। लेकिन भारत के भाग्य का फैसला अव ये होटल और ये कोठियां नहीं करेंगी। नीलिमा ने सोचा, आज भारत के भाग्य का फैसला कलकत्ते के मोर्ग में हो रहा है। कलकत्ते की जेलों में हो रहा है। कलकत्ते की सड़कों पर हो रहा है। उस समय नीलिमा का जी चाहा कि वह हज़ारों मील दूर वैठी हुई मिसेज़ पण्डित को पुकार-पुकारकर कहे, आओ और देखो कि भारत की इस खुली केन्द्रीय एसेम्वली में जो भारत की सड़कों, मिलों, चॉलों और आंगनों में हो रही है, समाजवादियों का कोई प्रतिनिधि मौजूद है या नहीं ?

नीलिमा ने उन पांचों लाशों की ओर पुनः देखा।

पवित्र नंगी लाशें, जैसे उज्ज्वल ज्वाला, भड़कता हुआ नंगा शोला, उत्पत्ति की तड़पती हुई बिजली ! जैसे इनक़लाब अपने रक्त से हंस दे और जलते हुए, सुलगते हुए अंगारे फूल बन जाएं !!

बहुत देर तक ये लाशें नंगी पड़ी रहीं।

बहुत देर तक मोर्ग के कर्मचारी उनका मज़ाक उड़ाते रहे।

बहुत देर तक नीलिमा, नीलिमा औरत और नीलिमा उस हस्पताल की नर्स, मोर्ग के कर्मचारियों को उन लाशों को ढक देने के लिए कहती रही।

बहुत देर तक वे लोग मज़ाक उड़ाते रहे और मज़ाक ही मज़ाक में बात को टालते रहे।

नीलिमा, नाज़ुकमिज़ाज नीलिमा का चेहरा एकाएक क्रोध से लाल हो गया। उसकी मुट्ठियां तन गईं और उसने बेधड़क दोनों हाथों से अपनी साड़ी खोल डाली और उसे उन लाशों पर डाल दिया।

अब वह सबके सामने नंगी खड़ी थी, लेकिन किसमें साहस था जो उस समय उससे आंख मिला सके। वह उस समय शिवजी की तीसरी आंख थी। जिसे देखती भस्म कर डालती। एक-एक करके मोर्ग के सारे कर्मचारी वहां से खिसक गए। पुलिस के सिपाही भी लज्जित होकर वहां से चले गए। अब वहां कोई न था। केवल नीलिमा शहीदों की लाशों पर पहरा दे रही थी।

इतने में कुछ लोग श्वेत चादरें ले आए।

रात बहुत गहरी हो चुकी थी, लेकिन आज कलकत्ता सोया न था। लोग गलियों और बाज़ारों में क्रोध से भरे घूम रहे थे। कहीं छुटकारा न था। कोई इस क्रोध और घृणा के भाव से भागकर कहीं पनाह न ले सकता था। पूंजीवाद की बढ़ती हुई भेद भावना ने धोखे और आत्म-प्रवंचना के समस्त रास्ते बन्द कर दिए थे। नीलिमा तेज़-तेज़ क़दमों से गुज़रते हुए यह सब कुछ सोच रही थी और देख रही थी कि आज कलकत्ते के लोग पागल से होकर अपनी बेचैन मुट्ठियों को बार-बार

भींचते हैं और इनक़लाबी गीत गाते हुए गली-कूचों में जनता के शत्रुओं को ढूंढ़ रहे हैं।

चाची कितने समय से बालकोनी पर खड़ी ब्रह्मपुत्र के चढ़ते हुए पानी को देख रहीं थी। मुन्ना अभी तक सोया न था। वह भी आज बेकरार था, बेचैन था, और उसे मालूम नहीं था कि कौन-सी चीज़ है जो उसे यों बेचैन कर रही है। गलियों और कूचों और बाज़ारों में नारे गूंज रहे थे। कभी कहीं कोई धमाका होता और कभी कहीं ज़ोर की चीखें सुनाई देतीं। तेज़-तेज़ कदमों से भागने की आवाज़ आती और फिर नारों के तूफान के बाद एकाएक सन्नाटा छा जाता।

एक ऐसे ही सन्नाटे के क्षण में नीलिमा लतिका के घर में प्रविष्ट हुई। चाची ने सीढ़ियों की बत्ती जलाई और नीलिमा को देखते ही उसके चेहरे को पढ़ लिया क्योंकि चाची ने जीवन में आंसू ही बोए थे और आंसू ही काटे थे और वह इस फसल को अच्छी तरह पहचानती थीं।

नीलिमा चाची को अलग ले जाकर कुछ बात करने लगी। चाची ने उसे हाथ के संकेत से रोक दिया। कहने लगीं 'कुछ न कहो, तुम्हारे चेहरे ने मुझे सब कुछ बता दिया है। यह बताओ कि वह इस समय है कहां?'

नीलिमा ने रुंधे हुए गले से कहा, 'शहर से आठ-दस मील दूर एक पुराने घाट की चिता में।'

चाची की आंखों की शोकातुर पुतलियां क्षण भर के लिए ज़ोर से कांपी। फिर एकदम ठिठक गईं। उन्होंने सीढ़ियों के जंगले को ज़ोर से पकड़ लिया।

मुन्ने ने पूछा, 'मां कहां है?'

नीलिमा ने कहा, 'मां नहीं आएगी।'

मुन्ने ने पूछा, 'मां क्यों नहीं आएगी?'

नीलिमा ने बड़ी कठिनता से कहा, 'मां बहुत दूर चली गई हैं।'

चाची रोते-रोते बोलीं, 'कहां हो तुम महाकवि ठाकुर ? तुमने 'नन्हा चांद' लिखा था जिसमें बच्चे खो जाते हैं और माएं उन्हें जूही के फूलों में तलाश करती हैं। आज कलकत्ते में माएं जूही के फूल बन गई हैं और नन्हे-नन्हे बच्चे उन्हें कलकत्ते की गलियों में ढूंढ़ रहे हैं। कहां हो तुम महाकवि ठाकुर ?'

मुन्ना धीरे से चाची के पास चला गया। बोला, 'चाची तू रोती क्यों है ? मैं जानता हूं मां कहां गई है।'

'कहां ?'

'वह यू. जी. हो गई हैं। जैसे मेरे पिता यू. जी. हो गए हैं। फिर एक दिन मैं भी बड़ा होकर यू. जी. हो जाऊंगा और अत्याचार के विरुद्ध लड़ूंगा। रो नहीं चाची।' नीलिमा ने अपने बहते हुए आंसू पोंछे बिना मुन्ने के हाथ में लतिका का खरीदा हुआ बाजा थमा दिया।

बाजे को देखकर मुन्ने को ऐसा मालूम हुआ जैसे वह अपनी मां के मुस्कराते हुए चेहरे को देख रहा हो। और जब उसने बाजे को ओठों से लगाया तो नीलिमा को ऐसा मालूम हुआ कि लतिका अपने ममता भरे ओठों से अपने प्यारे बच्चे को चूम रही है।

बाहर तूफान गरज रहा है।

भीतर मुन्ना बाजा बजा रहा है।

महालक्ष्मी का पुल

महालक्ष्मी स्टेशन के उस पार लक्ष्मीजी का एक मन्दिर है। इस मन्दिर में पूजा करने वाले हारते अधिक हैं और जीतते बहुत कम हैं। महालक्ष्मी स्टेशन के उस पार एक बहुत बड़ा गंदा नाला है जो मनुष्य के शरीर की गंदगी को अपने बदबूदार पानी में घोलता हुआ शहर से बाहर चला जाता है। मन्दिर में मनुष्य के मन की मैल धुलती है और गंदे नाले में मनुष्य के शरीर की मैल। और इन दोनों के बीच में महालक्ष्मी का पुल है।

महालक्ष्मी के पुल के ऊपर बाईं ओर लोहे के जंगले पर छः साड़ियां लहरा रही हैं। पुल के उस ओर इस स्थान पर सदैव कुछ एक साड़ियां लहराती रहती हैं। ये साड़ियां कुछ अधिक कीमती नहीं हैं। इनके पहनने वाले भी कुछ अधिक कीमती नहीं हैं। ये लोग प्रतिदिन इन साड़ियों को धोकर सूखने के लिए यहां डाल देते हैं और रेलवे लाइन के उस पार जाते हुए लोग, महालक्ष्मी स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा करते हुए लोग, गाड़ी की खिड़की और दरवाज़ों में से झांककर बाहर देखते हुए लोग प्रायः इन साड़ियों को वायु में झूलता हुआ देखते हैं। वे इनके भिन्न-भिन्न रंग देखते हैं। भूरा, गहरा भूरा, मटमैला, नीला, किरमज़ी भूरा, गंदा सुर्ख किनारा, गहरा नीला और लाल। वे लोग प्रायः इन्हीं रंगों को वायु में फैले हुए देखते हैं—एक क्षण के लिए—दूसरे क्षण में गाड़ी पुल के नीचे से गुज़र जाती है।

इन साड़ियों के रंग अब सुन्दर नहीं रहे। किसी समय संभव है जब ये नई खरीदी गई हों इनके रंग सुन्दर और चमकीले हों, लेकिन अब नहीं हैं। धोये जाने से इनकी आब मर चुकी है और अब ये साड़ियां अपने फीके दिनचर्या के व्यवहार को लिए बड़ी बेदिली से जंगले पर पड़ी नजर आती हैं। आप दिन में सौ बार इन्हें देखिये, ये आप को कभी सुन्दर न दीखेंगी। न इनका रंग-रूप अच्छा है न इनका कपड़ा। यह बड़ी सस्ती, घटिया-सी साड़ियां हैं। प्रतिदिन धुलने से इनका कपड़ा भी तार-तार हो रहा है। इनमें कहीं-कहीं छिद्र भी नजर आते हैं। कहीं उधड़े हुए टांके हैं, कहीं बदनुमा चितले दाग जो ऐसे पायदार हैं कि धोये जाने से भी नहीं धुलते बल्कि और गहरे होते जाते हैं। मैं इन साड़ियों के जीवन को जानता हूं क्योंकि मैं इन लोगों को जानता हूं जो इन साड़ियों को इस्तेमाल करते हैं। ये लोग महालक्ष्मी के पुल के निकट ही बाईं ओर आठ नम्बर की चाल में रहते हैं। यह चाल मतवाली नहीं है। बड़ी निर्धन सी चाल है। मैं भी इसी चाल में रहता हूं। इसलिए आपको इन साड़ियों और इनके पहनने वालों के सम्बन्ध में सब कुछ बता सकता हूं। अभी प्रधान-मन्त्री की गाड़ी आने में बहुत देर है। आप इन्तजार करते-करते उकता जाएंगे। इसलिए यदि आप इन छः साड़ियों के जीवन के बारे में मुझ से कुछ सुन लें तो समय आसानी से कट जाएगा।

इधर यह जो भूरे रंग की साड़ी लटक रही है वह शांता बाई की साड़ी है। इसके निकट जो साड़ी लटक रही है वह भी आपको भूरे रंग की दिखाई देती होगी लेकिन वह तो गहरे भूरे रंग की है। आप नहीं, मैं इसका गहरा भूरा रंग देख सकता हूं क्योंकि मैं इसे उस समय से जानता हूं जब इसका रंग चमकता हुआ गहरा भूरा था। अब इस दूसरी साड़ी का रंग भी वैसा ही भूरा है जैसा शान्ता बाई की साड़ी का। और शायद आप इन दोनों साड़ियों में बड़ी कठिनता से कोई फर्क महसूस कर सकें। मैं भी जब इनके पहनने वालों के जीवन को देखता हूं तो बहुत कम फर्क महसूस करता हूं। लेकिन ये पहली साड़ी जो भूरे

रंग की है वह शान्ता बाई की साड़ी है और जो दूसरी भूरे रंग की साड़ी है और जिसका गहरा भूरा रंग केवल मेरी आंखें देख सकती हैं, वह जीवना बाई की साड़ी है।

शान्ता बाई का जीवन भी इसकी साड़ी के रंग की तरह भूरा है। शान्ता बाई बरतन मांजने का काम करती है। इसके तीन बच्चे हैं। एक बड़ी लड़की है। दो छोटे लड़के हैं। बड़ी लड़की की आयु छः वर्ष की होगी। सब से छोटा लड़का दो वर्ष का है। शान्ता बाई का पति स्पून मिल के कपड़े-खाते में काम करता है। उसे बहुत सवेरे जाना होता है इसलिए शांता बाई अपने पति के लिए दूसरे दिन की दोपहर का खाना रात ही को पका रखती है। क्योंकि प्रातः स्वयं उसे भी बरतन साफ करने के लिए और पानी ढोने के लिए दूसरे घरों में जाना होता है और अब वह अपने साथ अपनी छः वर्ष की बच्ची को भी ले जाती है और फिर दोपहर को लौटती है। वापस आकर वह नहाती है और अपनी साड़ी धोती है और उसे सुखाने के लिए पुल के जंगले पर डाल देती है और फिर एक बहुत ही मैली पुरानी धोती पहनकर खाना पकाने में जुट जाती है। शांता बाई के घर चूल्हा उसी समय सुलग सकता है जब दूसरों के यहां चूल्हे ठंडे हो जाएं। अर्थात् दोपहर को दो बजे और रात को नौ बजे। इस समय के इधर और उधर उसे दोनों समय घर से बाहर बर्तन मांजने और पानी ढोने का काम करना होता है। अब तो छोटी लड़की भी उसका हाथ बटाती है। शांता बाई बर्तन साफ करती है, छोटी लड़की उन्हें धोती जाती है। दो-तीन बार ऐसा भी हुआ कि छोटी लड़की के हाथ से चीनी के बर्तन गिरकर टूट गए। अब मैं जब कभी छोटी लड़की की आंखें सूजी हुई और उसके गाल सुर्ख देखता हूं तो समझ जाता हूं कि किसी बड़े घर में चीनी के बर्तन टूटे हैं। उस दिन शांता भी मेरी नमस्ते का उत्तर नहीं देती। जलती, भुनती, बड़बड़ाती चूल्हा सुलगाने में व्यस्त हो जाती है और चूल्हे में से आग कम और धुआँ अधिक निकालने में सफल हो जाती है। छोटा

लड़का जो दो वर्ष का है धूएं से अपना दम घुटता देखकर चीखता है तो शांता बाई इसके चीनी ऐसे कोमल गालों पर जोर-जोर से चपतें लगाने लगती है। इस पर बच्चा और अधिक चिल्लाता है। यों तो यह दिनभर रोता रहता है क्योंकि इसे दूध नहीं मिलता और इसे अक्सर भूख लगी रहती है और दो वर्ष की आयु में ही इसे बाजरे की रोटी खानी पड़ती है। इसे अपनी मां का दूध दूसरे बहिन-भाइयों की तरह केवल पहले छः माह प्राप्त हुआ, वह भी बड़ी मुश्किल से। फिर यह भी खुश्क बाजरे और ठंडे पानी पर पलने लगा। हमारी चाल के सारे बच्चे इसी खुराक पर पलते हैं। वे दिन भर नंगे रहते हैं और रात को गुदड़ी ओढ़कर सो जाते हैं। सोते में भी वे भूखे रहते हैं और जागते में भी भूखे रहते हैं। और जब शांता बाई के पति की तरह बड़े हो जाते हैं तो दिन भर खुश्क बाजरा और ठण्डा पानी पी-पी कर काम करते जाते हैं। और उनकी भूख बढ़ती जाती है और हर समय पेट के भीतर और दिल और मस्तिष्क के भीतर एक बोझल सी धमक महसूस करते रहते हैं और जब पगार (वेतन) मिलती है तो इन में से कई एक सीधे ताड़ी-खाने का रुख करते हैं। ताड़ी पीकर कुछ घण्टों के लिए यह धमक गायब हो जाती है, लेकिन मनुष्य सदैव तो ताड़ी नहीं पी सकता। एक दिन पिएगा, दो दिन पिएगा, तीसरे दिन की ताड़ी के लिए पैसे कहां से लाएगा? आखिर खोली का किराया देना है। राशन का खर्चा है, भाजी-तरकारी है, तेल और नमक है, बिजली और पानी है। शांता बाई की भूरी साड़ी है जो छठे-सातवें महीने तार-तार हो जाती है। सात मास से अधिक यह कभी नहीं चलती। यह मिल वाले भी पांच रुपये चार आने में कैसी रद्दी निकम्मी साड़ी देते हैं। इसके कपड़े में जरा जान नहीं होती। छठे मास से जो फटना शुरू होता है तो सातवें मास बड़ी कठिनता से, सी जोड़कर, टांके लगाकर काम देता है और फिर वही पांच रुपये चार आने जमा करने पड़ते हैं और वही भूरे रंग की साड़ी आ जाती है। शांता को यह रंग बहुत पसंद है। इसलिए

कि यह मैला बहुत देर में होता है। इसे घरों में झाड़ू देनी होती है, बर्तन साफ़ करने पड़ते हैं। तीसरी-चौथी मंज़िल तक पानी ढोना होता है। वह भूरा रंग पसंद नहीं करेगी तो क्या खिलते हुए शोख रंग—गुलाबी, बसंती, नारंगी पसंद करेगी ? वह इतनी मूर्ख नहीं है। वह तीन बच्चों की मां है।

लेकिन कभी उसने ये शोख रंग भी देखे थे, पहने थे। इन्हें अपने धड़कते हुए दिल के साथ प्यार किया था। जब वह धारवाड़ में अपने गांव में थी, जब उसने बादलों में शोख रंगों वाली धनुष देखी थी, जहां मीलों उसने शोख रंग नाचते हुए देखे थे, जहां उसके बाप के धान के खेत थे; ऐसे शोख हरे-हरे रंग के खेत और आंगन में पीलू का पेड़ जिसके डाल-डाल से वह पीलू तोड़-तोड़कर खाया करती थी। जाने अब पीलुओं में वह मज़ा ही नहीं है। वह मिठास और घुलावट ही नहीं है। वह रंग, वह चमक-दमक जाकर कहां मर गई ? वे सारे रंग एकाएक क्यों भूरे हो गए ? शांताबाई कभी बर्तन मांजते-मांजते, खाना पकाते, अपनी साड़ी धोते, उसे पुल के जंगले पर लाकर डालते हुए यह सोचा करती है। और उसकी भूरी साड़ी से पानी के कतरे आंसुओं की तरह रेल की पटरी पर बहते जाते हैं और दूर से देखने वाले लोग एक भूरे रंग की कुरूप स्त्री को पुल के ऊपर जंगले पर एक भूरी साड़ी को फैलाते देखते हैं और बस, दूसरे क्षण में गाड़ी पुल के नीचे से गुज़र जाती है।

जीवना बाई की साड़ी जो शांता बाई की साड़ी के साथ लटक रही है गहरे भूरे रंग की है। देखने में इसका रंग शांता बाई की साड़ी से भी फीका नज़र आएगा लेकिन अगर आप इसे ध्यान से देखें तो इस फीकेपन के बावजूद यह आपको गहरे भूरे रंग की नज़र आएगी। यह साड़ी भी पांच रुपये चार आने की है और बहुत बोसीदा है। दो-एक स्थान से फटी हुई थी लेकिन अब वहां पर टांके लग गए हैं। और इतनी दूर से मालूम भी नहीं होते। हां, आप वह बड़ा टुकड़ा अवश्य देख सकते हैं जो गहरे नीले रंग का है और इस साड़ी के बीच में जहां

से यह साड़ी बहुत फट चुकी थी, लगाया गया है। यह टुकड़ा जीवना बाई की इससे पहली साड़ी का है और दूसरी साड़ी को मजबूत बनाने के लिए इस्तेमाल किया गया है। जीवना बाई विधवा है इसलिए वह सदैव पुरानी चीज़ों से नई चीज़ों को मजबूत बनाने के ढंग सोचा करती है। पुरानी यादों से नई यादों की कटुता को भूल जाने का यत्न किया करती है। जीवना बाई अपने उस पति के लिए रोती रहती है जिसने एक दिन नशे में इसे पीटा था और इतना पीटा था कि इसकी आंख कानी कर डाली थी। वह इसलिए नशे में था कि वह उस दिन मिल से निकाला गया था। बूढ़ा ढोंडू, अब मिल में किसी काम का नहीं रहा था। यद्यपि वह बहुत तजुर्बेकार था लेकिन उसके हाथों में इतनी शक्ति न रही थी कि वह जवान मज़दूरों का मुकाबला कर सकता। बल्कि अब तो उसे दिन-रात खांसी रहने लगी थी। कपास के नन्हे-नन्हे रेशे उसके फेफड़ों में जाकर इस बुरी तरह धंस गए थे जैसे चर्खियों और अंटियों में सूत के छोटे-छोटे महीन धागे फंस जाते हैं। जब बरसात आती तो ये नन्हे-नन्हे रेशे उसे दमे में ग्रस्त कर देते और जब बरसात न होती तो वह दिन भर और रात भर खांसता रहता। एक खुश्क, निरंतर खंकार घर में और कारखाने में, जहां वह काम करता था, सुनाई देती रहती। मिल के मालिक ने इस खांसी की खतरनाक घंटी को सुना और ढोंडू को मिल से निकाल दिया और फिर ढोंडू उसके छः मास बाद मर गया। जीवना बाई को उसके मरने का बहुत शोक हुआ। क्या हुआ यदि क्रोध में आकर एक दिन उसने जीवना बाई की आंख निकाल ली। तीस वर्ष का गृहस्थ-जीवन एक क्षण पर तो न्योछावर नहीं किया जा सकता। और उसका क्रोध था भी यथोचित। यदि मिल-मालिक ढोंडू को यों निर्दोष नौकरी से अलग न करता तो क्या जीवना की आंख निकल सकती थी? ढोंडू ऐसा न था। उसे अपनी बेकारी का दुख था। अपनी [illegible] नौकरी से हटाए जाने का शोक था और सबसे अधिक [illegible] का था कि मिल-मालिक ने चलते समय उसे [illegible]

पैंतीस वर्ष पहले ढोंढू खाली हाथ मिल में काम करने आया था उसी प्रकार खाली हाथ वापस लौटा। और दरवाज़े से बाहर निकलने पर और अपना नम्बरी कार्ड पीछे छोड़ आने पर उसे एक धचका-सा लगा। बाहर आकर उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे इन पैंतीस वर्षों में किसीने उसका सारा रंग, उसका सारा रक्त, उसका सारा रस चूस लिया हो और उसे बेकार समझकर बाहर कूड़े-करकट के ढेर पर फेंक दिया हो। और ढोंढू बड़े आश्चर्य से मिल के दरवाज़े को और उस बड़ी चिमनी को देखने लगा जो बिल्कुल उसके सिर पर एक भयानक देव की तरह आकाश से लगी खड़ी थी। एकाएक ढोंढू ने क्रोधवश अपने हाथ मले। ज़मीन पर ज़ोर से थूका और फिर ताड़ीखाने में चला गया।

लेकिन जीवना की आंख जब भी न जाती—यदि उसके पास इलाज के लिए पैसे होते। वह आंख तो गल-गलकर, सड़-सड़कर, फ्री-अस्पतालों में डाक्टरों और कम्पौंडरों और नर्सों की लापरवाहियों और गालियों का शिकार हो गई। और जब जीवना अच्छी हुई तो ढोंढू बीमार पड़ गया और ऐसा बीमार पड़ा कि फिर बिस्तर से न उठ सका। उन दिनों जीवना उसकी देख-रेख करती थी। शांता बाई ने सहायता के तौर पर उसे कुछ घरों में बरतन साफ करने का काम दिलवा दिया था और यद्यपि अब वह बूढ़ी थी और बरतनों को अच्छी तरह साफ न कर सकती थी फिर भी वह धीरे-धीरे रेंग-रेंगकर अपने निर्बल हाथों की झूठी ताकत के बोदे सहारे पर जैसे-तैसे काम करती रही। सुन्दर वस्त्र पहनने वाली, सुगंधित तेल लगाने वाली पत्नियों की गालियां सुनती रही और काम करती रही क्योंकि उसका ढोंढू बीमार था और उसे अपने आपको और अपने पति को जीवित रखना था।

लेकिन ढोंढू जीवित न रहा। और अब जीवना बाई अकेली थी। यह भी अच्छा ही था कि वह बिल्कुल अकेली थी और अब उसे केवल अपना ही पेट पालना था। विवाह के दो वर्ष बाद उसके यहां एक लड़की उत्पन्न हुई लेकिन जब वह जवान हुई तो किसी बदमाश के साथ

भाग गई और आज तक उसका किसीको पता न चला कि वह कहां है। फिर किसीने बताया और फिर बाद में बहुत-से लोगों ने बताया कि जीवना बाई की बेटी फारस रोड पर चमकीला-भड़कीला रेशमी लिबास पहने बैठी है। लेकिन जीवना को विश्वास न हुआ। उसने अपना सारा जीवन पांच रुपये चार आने की धोती पहने व्यतीत कर दिया था और उसे विश्वास था कि उसकी बेटी भी वैसा ही करेगी। वह ऐसा नहीं करेगी, इसका उसे कभी ख्याल तक न आया था। वह कभी फारस रोड नहीं गई क्योंकि उसे इस बात का विश्वास था कि उसकी बेटी वहां नहीं है। भला उसकी बेटी वहां क्यों जाने लगी, यहां अपनी खोली में क्या नहीं था? पांच रुपए चार आने वाली धोती थी। बाजरे की रोटी थी। ठंडा पानी था। सूखी मर्यादा थी। ये सब-कुछ छोड़कर वह क्यों फारस रोड जाने लगी। उसे तो कोई बदमाश चकमा देकर ले गया था। क्योंकि स्त्री प्रेम के लिए सब कुछ कर गुज़रती है। स्वयं वह तीस वर्ष पूर्व अपने ढोंडू के लिए अपने मां-बाप का घर छोड़कर नहीं चली आई थी? हां जिस दिन ढोंडू मरा और जब लोग उसकी लाश को जलाने के लिए ले जाने लगे और जीवना ने अपनी सेंदूर की डिबिया अपनी बेटी की अंगिया पर उंडेल दी जो उसने एक समय से ढोंडू की नज़रों से छुपाकर रखी हुई थी—ठीक उसी समय एक भारी-भरकम स्त्री बड़ा चमकीला लिबास पहने उससे आकर लिपट गई और फूट-फूटकर रोने लगी और उसे देखकर जीवना को विश्वास हो गया कि जैसे उसका सब-कुछ मर गया है। उसका पति, उसकी बेटी, उसकी इज़्ज़त। जैसे वह जीवन भर रोटी नहीं गंदगी खाती रही है। जैसे उसके पास कुछ नहीं था। शुरू ही से कुछ नहीं था। पैदा होने से पूर्व ही उससे सब-कुछ छीन लिया गया था। उसे निहत्था, नंगा और बेइज़्ज़त कर दिया गया था। और जीवना को उसी एक क्षण में ऐसा लगा कि वह जगह जहां उसका पति जीवन भर काम करता रहा और वह जगह जहां उसकी आंख अंधी हो गई, और वह जगह जहां उसकी बेटी अपनी दुकान सजा-

कर बैठ गई एक बहुत बड़ा अंधा कारखाना है जिसमें कोई जालिम हाथ मानव-शरीरों को पकड़कर ईख का रस निकालने वाली चर्खी में ठोंसता चला जाता है और दूसरे हाथ से तोड़-मरोड़कर दूसरी ओर फेंकता जाता है और एकाएक जीवना अपनी बेटी को धक्का देकर अलग खड़ी हो गई और चीखें मार-मारकर रोने लगी।

तीसरी साड़ी का रंग मटमैला नीला है। यानी नीला भी है और मटियाला भी। कुछ ऐसा अजीब-सा रंग है जो बार-बार धोने पर भी नहीं निखरता बल्कि और गंदा होता जाता है। यह मेरी पत्नी की साड़ी है। मैं फोर्ट में धन्नू भाई की फर्म में क्लर्की करता हूं। मुझे पैंसठ रुपये वेतन मिलता है। स्यून मिल और ज़करिया मिल के मज़दूरों को यही वेतन मिलता है, इसलिए मैं भी इन्हीं के साथ आठ नम्बर की चाल की एक खोली में रहता हूं। लेकिन मैं मज़दूर नहीं हूं, क्लर्क हूं। मैं फोर्ट में नौकर हूं। मैं दसवीं पास हूं। मैं टाइप कर सकता हूं। मैं अंग्रेजी में अर्ज़ी लिख सकता हूं। मैं अपने प्रधान-मन्त्री का भाषण जलसे में सुनकर समझ भी लेता हूं। आज कुछ देर बाद उनकी गाड़ी महालक्ष्मी पुल पर आएगी। नहीं, वह रेस कोर्स नहीं जाएंगे; वह समुद्र के किनारे एक शानदार भाषण देंगे। इस अवसर पर लाखों व्यक्ति एकत्रित होंगे। उन लाखों में एक मैं भी हूंगा। मेरी पत्नी को अपने प्रधान-मन्त्री की बातें सुनने का बहुत चाव है। लेकिन मैं उसे अपने साथ नहीं ले जा सकता। क्योंकि हमारे आठ बच्चे हैं और घर में हर समय परेशानी-सी रहती है। जब देखो कोई न कोई वस्तु कम हो जाती है। राशन तो रोज़ कम पड़ जाता है। अब नल में पानी भी कम आता है। रात को सोने के लिए जगह भी कम पड़ती है। और वेतन तो इतना कम पड़ता है कि महीने में केवल पन्द्रह दिन चलता है। बाकी पन्द्रह दिन सूद-ख़ोर पठान चलाता है। और वह भी कैसे गालियां बकते-झकते। घसीट-घसीटकर किसी धीमी चाल वाली मालगाड़ी की तरह यह जीवन चलता है।

मेरे आठ बच्चे हैं। लेकिन ये स्कूल में नहीं पढ़ सकते। मेरे पास

इनकी फीस के कभी पैसे न होंगे। पहले-पहल जब मैंने ब्याह किया था और सावित्री को अपने घर अर्थात् अपनी खोली में लाया था तो मैंने बहुत कुछ सोचा था। उन दिनों सावित्री भी बड़ी अच्छी-अच्छी बातें सोचा करती थी। गोभी के कोमल-कोमल, हरे-हरे पत्तों की तरह प्यारी-प्यारी बातें। जब वह मुस्कराती थी तो सिनेमा की तस्वीर की तरह सुन्दर दीखा करती थी। अब वह मुस्कराहट न जाने कहां चली गई है। उसके स्थान एक स्थायी त्यौरी ने ले लिया है। वह ज़रा-सी बात पर बच्चों को बेतहाशा पीटना शुरू कर देती है और मैं तो कुछ भी कहूं, जो भी कहूं, कितनी ही नम्रता से कहूं, वह तो बस काट खाने को दौड़ती है। न जाने सावित्री को क्या हो गया है? न जाने मुझे क्या हो गया है? मैं दफ्तर में सेठ की गालियां सुनता हूं। घर पर पत्नी की गालियां सहता हूं और सदैव चुप रहता हूं। कभी-कभी सोचता हूं शायद मेरी पत्नी को एक नई साड़ी की आवश्यकता है। शायद इसे केवल एक नई साड़ी की ही नहीं, एक नये चेहरे, एक नये घर, एक नये वातावरण, एक नये जीवन की आवश्यकता है। लेकिन अब इन बातों के सोचने से क्या होता है? अब तो स्वतन्त्रता आ गई है और हमारे प्रधान-मन्त्री ने यह भी कह दिया है कि इस सन्तति को अर्थात् हम लोगों को अपने जीवन में कोई आराम नहीं मिल सकता। मैंने सावित्री को अपने प्रधान-मन्त्री का भाषण, जो समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ था, सुनाया तो वह उसे सुनकर आग-बबूला हो गई और उसने क्रोध में आकर चूल्हे के निकट पड़ा हुआ एक चिमटा मेरे सिर पर दे मारा। यह घाव का निशान जो आप मेरे माथे पर देख रहे हैं उसी का निशान है। सावित्री की मटमैली नीली साड़ी पर भी ऐसे कई घावों के निशान हैं लेकिन आप उन्हें देख नहीं सकेंगे। मैं देख सकता हूं। उनमें से एक निशान तो उसी मूंगिया रंग की जारजट की साड़ी का है जो उसने ओपरा हाउस के निकट भंजीमल, भोंदूराम पारचा विक्रेता की दुकान पर देखी थी। एक निशान उस खिलौने का है जो पच्चीस रुपये का था और जिसे देखकर

मेरा पहला बच्चा प्रसन्नता से किलकारियां मारने लगा था लेकिन जिसे हम खरीद न सके थे और जिसे न पाकर हमारा बच्चा दिन भर रोता रहा था। एक निशान उस तार का है जो एक दिन जब्बलपुर से आया था, जिसमें सावित्री की मां की सख्त बीमारी की सूचना थी। सावित्री जब्बलपुर जाना चाहती थी लेकिन हज़ार कोशिश पर भी मुझे किसी से रुपये उधार न मिल सके थे और सावित्री जब्बलपुर न जा सकी थी। एक निशान उस तार का है जिसमें उसकी मां की मृत्यु की खबर थी। एक निशान······लेकिन मैं किस-किस निशान का ज़िक्र करूं। इन चितले-चितले, गदले-गदले, गन्दे दाग़ों से सावित्री की पांच रुपये चार आने वाली साड़ी भरी पड़ी है। रोज़-रोज़ धोने पर भी ये दाग़ नहीं छूटते और शायद जब तक यह जीवन रहेगा ये दाग़ यों ही बने रहेंगे। एक साड़ी से दूसरी साड़ी में पहुंचते रहेंगे।

चौथी साड़ी किरमज़ी रंग की है और किरमज़ी रंग में भूरा रंग भी झलक रहा है। यों तो ये सब भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियां हैं लेकिन भूरा रंग इन सबों में झलकता है। ऐसा मालूम होता है जैसे इन सब का जीवन एक है। जैसे इन सब का मूल्य एक है। जैसे ये सब कभी ज़मीन से ऊपर नहीं उठीं। जैसे इन्होंने कभी ओस में हंसती हुई धनुक, क्षितिज पर चमकती हुई ऊषा, बादलों में लहराती हुई बिजली नहीं देखी। जैसे जो शांताबाई की जवानी है वह जीवना का बुढ़ापा है। वह सावित्री का अधेड़पन है। जैसे ये सब साड़ियां एक जीवन, एक रंग, एक स्तर, एक क्रम लिए हुए हवा में झूलती जाती हैं।

यह किरमज़ी भूरे रंग की साड़ी झब्बू भइये की औरत की है। इस औरत से मेरी पत्नी कभी बात नहीं करती क्योंकि एक तो उसके कोई बच्चा-बच्चा नहीं है और एक ऐसी औरत जिसके कोई बच्चा न हो बड़ी बुरी होती है। और जादू-टूने करके दूसरों के बच्चों को मार डालती है और भूतों को बुलाकर अपने घर में बसा लेती है। मेरी पत्नी कभी उसे मुंह नहीं लगाती। यह औरत झब्बू भैया ने खरीदकर प्राप्त की है।

मेरा पहला बच्चा प्रसन्नता से किलकारियां मारने लगा था लेकिन जिसे हम खरीद न सके थे और जिसे न पाकर हमारा बच्चा दिन भर रोता रहा था। एक निशान उस तार का है जो एक दिन जब्बलपुर से आया था, जिसमें सावित्री की मां की सख्त बीमारी की सूचना थी। सावित्री जब्बलपुर जाना चाहती थी लेकिन हज़ार कोशिश पर भी मुझे किसी से रुपये उधार न मिल सके थे और सावित्री जब्बलपुर न जा सकी थी। एक निशान उस तार का है जिसमें उसकी मां की मृत्यु की खबर थी। एक निशान······लेकिन मैं किस-किस निशान का ज़िक्र करूं। इन चितले-चितले, गदले-गदले, गन्दे दाग़ों से सावित्री की पांच रुपये चार आने वाली साड़ी भरी पड़ी है। रोज़-रोज़ धोने पर भी ये दाग़ नहीं छूटते और शायद जब तक यह जीवन रहेगा ये दाग़ यों ही बने रहेंगे। एक साड़ी से दूसरी साड़ी में पहुंचते रहेंगे।

चौथी साड़ी किरमज़ी रंग की है और किरमज़ी रंग में भूरा रंग भी झलक रहा है। यों तो ये सब भिन्न-भिन्न रंगों की साड़ियां हैं लेकिन भूरा रंग इन सबों में झलकता है। ऐसा मालूम होता है जैसे इन सब का जीवन एक है। जैसे इन सब का मूल्य एक है। जैसे ये सब कभी ज़मीन से ऊपर नहीं उठीं। जैसे इन्होंने कभी ओस में हंसती हुई धनुक, क्षितिज पर चमकती हुई ऊषा, बादलों में लहराती हुई बिजली नहीं देखी। जैसे जो शांताबाई की जवानी है वह जीवना का बुढ़ापा है। वह सावित्री का अधेड़पन है। जैसे ये सब साड़ियां एक जीवन, एक रंग, एक स्तर, एक क्रम लिए हुए हवा में झूलती जाती हैं।

यह किरमज़ी भूरे रंग की साड़ी झब्बू भइये की औरत की है। इस औरत से मेरी पत्नी कभी बात नहीं करती क्योंकि एक तो उसके कोई बच्चा-बच्चा नहीं है और एक ऐसी औरत जिसके कोई बच्चा न हो बड़ी बुरी होती है। और जादू-टूने करके दूसरों के बच्चों को मार डालती है और भूतों को बुलाकर अपने घर में बसा लेती है। मेरी पत्नी कभी उसे मुंह नहीं लगाती। यह औरत झब्बू भैया ने खरीदकर प्राप्त की है।

झब्बू भैया मुरादाबाद का रहने वाला है लेकिन बचपन ही से अपना देश छोड़कर इधर चला आया। वह मराठी और गुजराती भाषा में मज़े से बात-चीत कर सकता है। इसी कारण से उसे बहुत शीघ्र पवार मिल के गनी खाते में जगह मिल गई। झब्बू भैया को शुरू ही से ब्याह का बहुत शौक था। उसे बीड़ी का, ताड़ी का, किसी चीज़ का शौक नहीं था, था तो केवल इस बात का कि उसकी शादी शीघ्र से शीघ्र हो जाए। जब उसके पास सत्तर-अस्सी रुपये एकत्रित हो गए तो उसने अपने देश जाने की ठानी ताकि वहां अपनी बिरादरी से किसी को ब्याह लाए। लेकिन फिर उसने सोचा, सत्तर-अस्सी रुपयों से क्या होगा? आने-जाने का किराया ही मुश्किल से पूरा होगा। चार वर्ष की मेहनत के बाद उसने यह रक़म जोड़ी थी लेकिन इस रकम से वह मुरादाबाद जा सकता था लेकिन जाकर शादी नहीं कर सकता था। इसलिए झब्बू भैया ने यहीं एक बदमाश से बात-चीत करके इस औरत को सौ रुपये में खरीद लिया। अस्सी रुपये इसने नकद दिए, बीस रुपये उधार में रहे जो उसने एक वर्ष में अदा कर दिए। बाद में झब्बू को मालूम हुआ कि यह औरत भी मुरादाबाद की रहने वाली थी, धीरज गांव की, और उसकी बिरादरी ही की थी। झब्बू बहुत प्रसन्न हुआ। चलो यहीं बैठे-बैठे सब काम हो गया। अपनी जात-बिरादरी की, अपने प्रान्त की, अपने धर्म की औरत यहीं बैठे-बिठाए सौ रुपये में मिल गई। उसने बड़े चाव-चाव से अपना ब्याह रचाया और फिर उसे मालूम हुआ कि उसकी पत्नी लड़िया बहुत अच्छा गाती है। वह स्वयं भी अपनी पाटदार आवाज में ज़ोर से गाने बल्कि गाने से अधिक चिल्लाने का शौकीन था। अब तो खोली में जैसे किसी ने दिन-रात रेडियो खोल रखा हो। दिन के समय खोली में लड़िया काम करते हुए गाती थी। रात को झब्बू और लड़िया दोनों गाते थे। उनके यहां कोई बच्चा न था। इसलिए उन्होंने एक तोता पाल रखा था। मियां-मिट्ठू पति और पत्नी को गाते देखकर स्वयं भी लहक-लहक कर गाने लगते। लड़िया ने एक बात

और भी थी। झब्बू न बीड़ी पिए न सिग्रेट, ताड़ी न शराव। लड़िया बीड़ी, सिग्रेट, ताड़ी सभी कुछ पीती थी। कहती थी, पहले वह यह सब कुछ नहीं जानती थी लेकिन जब से वह बदमाशों के पल्ले पड़ी उसे ये सब बातें सीखनी पड़ीं और अब वह और सब बातें तो छोड़ सकती है लेकिन बीड़ी और ताड़ी नहीं छोड़ सकती। कई बार ताड़ी पीकर लड़िया ने झब्बू पर हमला किया और झब्बू ने उसे रूई की तरह धुनककर रख दिया। उस अवसर पर तोता बहुत शोर मचाता था। वह रात को दोनों को गालियां बकते देखकर स्वयं भी पिंजरे में टंगा हुआ ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता—लड़िया को मत मारो मादरचोद—लड़िया को मत मारो मादरचोद। एक बार तो उसकी गाली सुनकर झब्बू क्रोध में आकर तोते को पिंजरे समेत गंदे नाले में फेंकने लगा था लेकिन जीवना ने बीच में पड़कर तोते को बचा लिया। तोते को मारना बड़ा पाप है, जीवना ने कहा। तुम्हें फिर ब्राह्मणों को बुलाकर प्रायश्चित् करना पड़ेगा और तुम्हारे पन्द्रह-बीस रुपये खुल जाएंगे। यह सोचकर झब्बू ने तोते को नाले में फेंक देने का विचार छोड़ दिया।

शुरू-शुरू में तो झब्बू को ऐसी शादी पर चारों ओर से फटकार पड़ीं। वह स्वयं भी लड़िया को बड़े संदेह की नज़रों से देखता रहा और कई बार उसने बिना कारण ही उसे पीटा और स्वयं भी मिल में न जाकर उसकी निगरानी करता रहा लेकिन धीरे-धीरे लड़िया ने सारी चाल में अपना विश्वास कायम कर लिया। लड़िया कहती थी कि कोई औरत सच्चे दिल से बदमाशों के पल्ले पड़ना पसंद नहीं करती। वह तो एक घर चाहती है। चाहे वह छोटा-सा ही हो। वह एक पति चाहती है जो उसका अपना हो, चाहे वह झब्बू भइया जैसा हर समय शोर मचाने वाला, ज़बान-दराज़, शेखीखोरा ही क्यों न हो। वह एक नन्हा बच्चा चाहती है चाहे वह कितना ही कुरूप क्यों न हो। और अब लड़िया के पास घर भी था और झब्बू भी था और यदि बच्चा नहीं था तो क्या हुआ, हो जाएगा। और यदि नहीं होता तो भगवान् की इच्छा। यह

मियां मिट्ठू ही उसका बेटा बनेगा।

एक दिन लड़िया अपने मियां मिट्ठू का पिंजरा झुला रही थी और उसे चूरी खिला रही थी और अपने दिल के सपनों में उस नन्हे-से बालक को देख रही थी जो वायु में हुमकता-हुमकता उसकी गोद की ओर बढ़ता चला आ रहा था कि चाल में शोर-सा बढ़ने लगा और उसने दरवाज़े में से झांककर देखा कि कुछ मज़दूर झब्बू को उठाए चले आ रहे हैं और उनके कपड़े रक्त से रंगे हुए हैं। लड़िया का दिल धक से रह गया। वह भागती-भागती नीचे गई और उसने बड़ी तेज़ी से अपने पति को मज़दूरों से छीनकर अपने कंधे पर उठा लिया और अपनी खोली में ले आई। पूछने पर पता चला कि झब्बू से गनी खाते के मैनेजर ने कुछ डांट-डपट की। उस पर झब्बू ने भी उसे दो हाथ जड़ दिए। उस पर बहुत वावेला मचा और मैनेजर ने अपने बदमाशों को बुलाकर झब्बू की खूब ठुकाई की और उसे मिल से बाहर निकाल दिया। अच्छा हुआ कि झब्बू बच गया अन्यथा उसके मरने में कोई कसर न थी। लड़िया ने बड़े साहस से काम लिया। उसने उसी दिन से अपने सिर पर टोकरी उठा ली और गली-गली भाजी-तरकारी बेचने लगी जैसे वह जीवन भर यही धंधा करती आई थी। इसी प्रकार मेहनत-मज़दूरी करके उसने अपने झब्बू को अच्छा कर लिया। झब्बू अब भला-चंगा है लेकिन अब उसे किसी मिल में काम नहीं मिलता। वह दिन भर अपनी खोली में खड़ा महालक्ष्मी के स्टेशन के चारों ओर कारखाने की ऊंची-ऊंची चिमनियों को तकता रहता है। स्यून मिल, न्यू मिल, लाइड मिल, पुवार मिल, धनराज मिल। लेकिन उसके लिए किसी मिल में जगह नहीं है क्योंकि मज़दूर को गोली खाने का अधिकार है, गाली देने का अधिकार नहीं है। आजकल लड़िया बाज़ारों और गलियों में आवाज़ें दे-देकर भाजी-तरकारी बेचती है और घर का सारा काम-काज भी करती है। उसने बीड़ी, ताड़ी सब छोड़ दिया है। हां, उसकी साड़ी, किरमज़ी भूरे रंग की साड़ी, जगह-जगह से फटती जा रही है। थोड़े दिनों तक और यदि झब्बू को काम

न मिला तो लड़िया को अपनी साड़ी पर पुरानी साड़ी के टुकड़े जोड़ने पड़ेंगे और अपने मियां मिट्ठू को चूरी खिलाना बंद करना पड़ेगा।

पांचवीं साड़ी का किनारा गहरा नीला है। साड़ी का रंग गदला सुर्ख है लेकिन किनारा गहरा नीला है और इस नीले रंग में अब भी कहीं-कहीं चमक बाकी है। यह साड़ी दूसरी साड़ियों से बढ़िया है क्योंकि यह पांच रुपये चार आने की नहीं है। इसका कपड़ा, इसकी चमक-दमक कहे देती है कि यह उनसे कुछ भिन्न है। आपको दूर से यह कुछ भिन्न मालूम नहीं होती होगी, लेकिन मैं जानता हूं कि यह उनसे कुछ भिन्न है। इसका कपड़ा बढ़िया है। इसका किनारा चमकदार है। इसकी कीमत पौने नौ रुपये है। यह साड़ी मंजुला की है। यह साड़ी मंजुला के व्याह की है। मंजुला के व्याह को अभी छः मास भी नहीं हुए हैं। उसका पति पिछले मास चर्खी के घूमते हुए पटे की लपेट में आकर मर गया था और अब सोलह वर्ष की सुन्दर मंजुला विधवा है। उसका दिल जवान है। उसका शरीर जवान है। उसकी आशाएं जवान हैं लेकिन अब वह कुछ नहीं कर सकती क्योंकि उसका पति मिल की एक दुर्घटना में मर गया है। वह पटा बड़ा ढीला था और घूमते हुए बार-बार फटफटाता था। और काम करने वालों के विरोध के बावजूद उसे मिल-मालिकों ने बदला नहीं था क्योंकि काम चल रहा था और दूसरी सूरत में थोड़ी देर के लिए काम बंद करना पड़ता। पटे को बदलवाने के लिए रुपया भी खर्च होता था। मजदूर तो किसी समय भी तबदील किया जा सकता है, उसके लिए रुपया थोड़े ही खर्च होता है, लेकिन पटा तो बड़ी कीमती चीज़ है।

जब मंजुला का पति मर गया तो मंजुला ने हरजाने की अर्ज़ी दे दी जो अस्वीकार हुई क्योंकि मंजुला का पति अपनी बेध्यानी से मरा था इसलिए मंजुला को कोई हरजाना न मिला और वह अपनी वही नई दुल्हन की साड़ी पहने रही जो उसके पति ने पौने नौ रुपये में उसके लिए खरीदी थी क्योंकि उसके पास कोई दूसरी साड़ी नहीं थी जो वह अपने पति की मृत्यु के सोग में पहन सकती। वह अपने पति के मर जाने के

बाद भी दुल्हन का लिबास पहनने पर बाध्य थी क्योंकि उसके पास कोई दूसरी साड़ी न थी और जो साड़ी थी वह यही गहरे सुर्ख रंग की पौने नौ रुपये की साड़ी थी जिसका किनारा गहरा नीला था ।

शायद अब मंजुला भी पांच रुपये चार आने की साड़ी पहनेगी । उसका पति जीवित रहता तब भी वह दूसरी साड़ी पांच रुपये चार आने ही की लाती । इस बात से उसके जीवन में कोई विशेष अंतर नहीं आया लेकिन इतना अंतर अवश्य आया है कि वह यह साड़ी क्यों पहनना चाहती है । एक श्वेत साड़ी पांच रुपये चार आने वाली जिसे पहनकर वह दुल्हन नहीं विधवा मालूम हो सके । यह साड़ी उसे दिन-रात काटे खाने को दौड़ती है । इस साड़ी से जैसे उसके मृत पति की सुगंध आती रहती है । जैसे इसके हर तार पर उसके प्यार भरे चुम्बन अंकित हैं । जैसे इसके ताने-बाने में उसके पति के आलिंगन बंधन मौजूद हैं । उसके काले बालों वाली छाती का सारा प्यार बसा है । जैसे अब यह साड़ी साड़ी नहीं है एक गहरी कब्र है जिसको [illegible] महीनों से वह हर समय अपने शरीर के गिर्द लपेटे रखने पर मजबूर है । मंजुला जीवित है [illegible] जा रही है ।

छठी साड़ी का रंग लाल है लेकिन उसे यहां नहीं होना चाहिए था क्योंकि उसकी पहनने वाली मर चुकी है । फिर भी यह साड़ी यहां अलगनी पर बराबर मौजूद है । प्रतिदिन की तरह [illegible] है । यह माई की साड़ी है जो हमारी चाल के दरवाज़े के निकट खुले आंगन में रहा करती थी । माई का एक बेटा था, सीतो । वह अब जेल में है । हां, सीतो की पत्नी और उसका लड़का यहीं चाल के आंगन में दरवाज़े के निकट पड़े रहते हैं । सीतो, सीतो की पत्नी, उसका बेटा, और बुढ़िया माई, ये सब लोग हमारी चाल के नहीं हैं । इनके लिए कोठरी भी नहीं है और इनके लिए इतना खाना कपड़ा भी नहीं [illegible] जितना हम लोगों को मिलता है । इसलिए ये लोग आंगन में रहते हैं । यहीं खाना पकाते हैं, वहीं ज़मीन पर पड़कर सो रहते हैं । [illegible]

माई मारी गई थी। वह बड़ा छिद्र जो आप इस साड़ी में देख रहे हैं— पल्लू के निकट, यह गोली का छिद्र है। यह कारतूस की गोली माई को भंगियों की हड़ताल के दिनों में लगी थी। नहीं, वह उस हड़ताल में भाग नहीं ले रही थी। वह बेचारी तो बहुत बूढ़ी थी, चल-फिर भी न सकती थी। उस हड़ताल में तो उसका बेटा सीतो और अन्य भंगी शामिल थे। ये लोग महंगाई मांगते थे और खोली का किराया मांगते थे अर्थात् अपने जीवन के लिए दो वक्त का रोटी-कपड़ा और सिर पर एक छत चाहते थे। इसलिए उन लोगों ने हड़ताल की थी और जब हड़ताल पर रोक लगा दी गई तो उन लोगों ने जलूस निकाला और उस जलूस में माई का बेटा सीतो आगे-आगे था और बड़े ज़ोर-शोर से नारे लगाता था। फिर जब जलूस पर भी रोक लगा दी गई तो गोली चली और हमारी चाल के सामने चली। हम लोगों ने तो अपने दरवाज़े बन्द कर लिए लेकिन घबराहट में चाल का दरवाज़ा बन्द करना किसी को याद न रहा और फिर हमें अपने बन्द कमरों में ऐसा मालूम हुआ जैसे गोली इधर से उधर से चारों ओर से चल रही हों। थोड़ी देर के बाद बिल्कुल सन्नाटा हो गया और जब हम लोगों ने डरते-डरते दरवाज़ा खोला और बाहर झांक कर देखा तो जलूस तितर-बितर हो चुका था और हमारी चाल के निकट बुढ़िया मरी पड़ी थी। यह उसी बुढ़िया की लाल साड़ी है जिसका बेटा सीतो अब जेल में है। इस लाल साड़ी को अब बुढ़िया की बहू पहनती है। इस साड़ी को बुढ़िया के साथ जला देना चाहिए था लेकिन क्या किया जाए। तन ढांकना अधिक ज़रूरी है। मरे हुओं की इज़्ज़त से भी कहीं अधिक यह ज़रूरी है कि जीवितों का तन ढांका जाए। यह साड़ी चलने-चलाने के लिए नहीं है तन ढकने के लिए है। हां, कभी-कभी सीतो की पत्नी इसके पल्लू से अपने आंसू पोंछ लेती है क्योंकि इसमें पिछले अस्सी वर्षों के सारे आंसू और सारी आशाएं और सारी विजयें और हारें रची हुई हैं। आंसू पोंछकर सीतो की पत्नी फिर उसी हिम्मत से काम करने लग जाती है जैसे कुछ हुआ ही नहीं। नहीं, गोली नहीं चली, कोई जेल

नहीं गया। भंगन की झाड़ू उसी प्रकार चल रही है।

मैं तो बातों-बातों में प्रधान-मन्त्री महोदय की गाड़ी निकल गई। वह यहां नहीं ठहरी। मैं समझता था वह यहां अवश्य ठहरेगी। प्रधान-मन्त्री महोदय दर्शन देने के लिए गाड़ी से निकल कर थोड़ी देर के लिए प्लेटफार्म पर टहलेंगे और शायद हवा में झूलती हुई इन छः साड़ियों को भी देख लेंगे जो महालक्ष्मी पुल के बाएं ओर लटक रही हैं। ये छः साड़ियां जो बहुत ही मामूली औरतों की साड़ियां हैं; ऐसी मामूली औरतें जिनसे हमारे देश के छोटे-छोटे घर बनते हैं, जहां एक कोने में चूल्हा सुलगता है, एक कोने में पानी का घड़ा रखा है, ऊपरी ताकचे में शीशा है, कंघी है, सेंदूर की डिबिया है, खाट पर नन्हा बच्चा सो रहा है, अलगनी पर कपड़े सूख रहे हैं। ये इन छोटे-छोटे लाखों-करोड़ों घरों को बनाने वाली औरतों की साड़ियां हैं जिन्हें हम भारत कहते हैं। ये औरतें जो हमारे प्यारे-प्यारे बच्चों की माएं हैं, हमारे भोले भाइयों की प्यारी बहनें हैं, हमारे सरल प्रेमों का गीत हैं, हमारी पांच हजार वर्ष पुरानी संस्कृति का सबसे ऊंचा चिह्न हैं। महामन्त्री महोदय! ये हवा में झूलती हुई साड़ियां तुम से कुछ कहना चाहती हैं। तुम से कुछ मांगती हैं। ये कोई बहुत बड़ी कीमती वस्तु तुम से नहीं मांगती हैं। ये कोई बड़ा देश, कोई बड़ी पदवी, कोई बड़ी मोटरकार, कोई परमिट, कोई ठेका, कोई प्रापर्टी—ऐसी किसी वस्तु की इच्छुक नहीं हैं। ये तो जीवन की बहुत ही छोटी-छोटी चीजें मांगती हैं। देखिए यह शांता बाई की साड़ी है जो अपने बचपन की खोई हुई बन्दूक मांगती है। यह जीवना बाई की साड़ी है जो अपनी आंखों की ज्योति और अपनी बेटी की इज्जत मांगती है। यह लाविनी की साड़ी है जिसके गीत मर चुके हैं और जिसके पास अपने बच्चों के लिए स्कूल की फीस नहीं है। यह झड़िया है जिसका पति बेकार है और जिसके कमरे में एक तोता है जो दो दिन से भूखा है। यह नई दुल्हन की साड़ी है जिसके पति का जीवन चमड़े के पटे से भी कम कीमती है। यह बूढ़ी भंगन की लाल साड़ी है जो बन्दूक की

गोली को हल के फाले में तवदील कर देना चाहती है ताकि धरती से मनुष्य का रक्त फूल वनकर खिल उठे और गेहूं के सुनहले खोशे वनकर लहराने लगें……।

लेकिन प्रधान-मन्त्री महोदय की गाड़ी नहीं रुकी और वह इन छः साड़ियों को नहीं देख सके और भाषण देने के लिए चौपाटी पर चले गए। इसलिए अव मैं आप से कहता हूं कि यदि कभी आप की गाड़ी इधर से गुज़रे तो आप इन छः साड़ियों को अवश्य देखिए जो महालक्ष्मी के पुल की वाईं ओर लटक रही हैं और फिर आप इन रंगा-रंग रेशमी साड़ियों को भी देखिए जिन्हें धोवियों ने इसी पुल के दाएँ ओर सूखने के लिए लटका रखा है और जो उन घरों से आई हैं जहां ऊंची-ऊंची चिमनियों वाले कारखानों के मालिक या ऊंचा-ऊंचा वेतन पाने वाले ऊंचे लोग रहते हैं। आप इस पुल के दाएं-वाएं दोनों ओर अवश्य देखिए और फिर अपने आप से पूछिए कि आप किस ओर जाना चाहते हैं। देखिए मैं आपसे समाजवादी वनने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं आपको वर्ग-संघर्ष का आदेश भी नहीं दे रहा हूं। मैं तो आपसे केवल यह पूछना चाहता हूं कि आप महालक्ष्मी पुल के दाएं ओर हैं या वाएं ओर ?

: ४ :

बारूद और चेरी के फूल

सिओल जल रहा था।

ईंटों के ढेर के पीछे लाइम ने लकी स्ट्राइक का एक सिग्रेट सुलगाया और अपनी राइफ़ल के सहारे खड़े होकर अपने चारों ओर देखा।

चारों ओर शहर की गिरी हुई इमारतों के मलबे पड़े थे। कहीं-कहीं कंकरीट की अधजली इमारतें बाकी रह गई थीं। शहर के बीचोंबीच हज़ारों टन बमों की मार से हवाई जहाज़ों ने अमरीकी सेना के लिए एक छोटा-सा रास्ता बनाया था ताकि अमरीकी सेना शहर के पूर्व से पश्चिम तक जा सके, लेकिन जब इस पर भी सिओल विजय न हुआ तो फिर हज़ारों टन के बमों से एक दूसरा रास्ता बनाया गया जो उत्तर से दक्षिण तक रास्ता साफ़ करता था। अब शहर को चार टुकड़ों में बांटकर घेरे में ले लिया गया। फिर भी क़दम-क़दम पर लड़ाई हुई। ये कम्बख़्त कोरियाई सिपाही जब तक मरते नहीं लड़ते ही जाते हैं।

लाइम ने एक ज़ोर का कश खींचकर सोचा, अपने चारों ओर देखा और फिर उसे अपने चारों ओर अधजली इमारतें नज़र आईं। चारों ओर मलबे के ढेर, पानी के नल फटे हुए, बिजली के खम्भे सड़कों पर गिरे हुए। जगह-जगह कोरियाई और अमरीकी सिपाहियों की लाशों के ढेर। बारूद की कांच, बमों के गहरे गढ़े और वायु में नाइट्रेट और फ़ासफ़ोरस की तेज़ और कड़वी दुर्गन्ध और चारों ओर आंखों को जलाने

वाला स्याह धुआं······यह धुआं गुबार की तरह सारे शहर पर छाया हुआ था। लाइम खांसने लगा और फिर खांसते-खांसते गाली बकते हुए मुड़कर अपने साथी से कहने लगा—

'बड़ी मुसीबत की जंग थी यह, जूस ! बड़ी हरामजादी, निकम्मी, शैतानी, अल्लाहमारी जंग थी जूस।'

जूस, जिसका असली नाम न लाइम जूस था न ऑरेंज जूस, न कोका कोला जूस बल्कि केवल जोन्ज़ था लेकिन जिसे उसके साथी इसलिए जूस कहते थे कि उसका चेहरा देखने में बड़ा गोल-मटोल, मासूम और पिलपिला-सा था। चमड़ी इतनी कोमल कि मालूम होता था कि यदि उसमें ज़रा-सी सूई चुभो दी जाए तो तुरन्त रस की धार फूट निकलेगी। बालों का रंग प्लाटिनम का-सा था और भवें और पलकें तो बिल्कुल श्वेत थीं, जिसमें से उसकी छोटी-छोटी हरी आंखें मुर्गी के बच्चे की तरह चमकती थीं। अपनी ठोड़ी खुजाते हुए वह बोला, 'जंग मुसीबत की थी, खून भी बहुत बहा, लेकिन आखिर आज हमारी विजय है।'

'इसमें कोई संदेह नहीं' लाइम ने विजयपूर्ण नजरों से सामने की कंकरीट की इमारत को देखा। उस इमारत की आधी छत उड़ चुकी थी, आधी बाकी थी। छत के ऊपर अमरीकी झंडा लहरा रहा था। खिड़कियां, दरवाजे, सब टूटे हुए थे और चारों ओर सड़क के ऊपर कांच की किरचियां बिखरी पड़ी थीं। लाइम ने सिग्रेट का दूसरा कश लिया और उसे इतने जोर से भीतर खींचा कि सिग्रेट जलकर आधा हो गया और उसकी राख उड़कर लाइम की आंखों में जा पड़ी और वह गालियां बकता हुआ अपनी आंखें मलने लगा, 'खुदा गारत करे इन सब ब्लडी एशिया वालों को। कहां आकर ला पटका। मैं अच्छा-भला अपने सिनसिन्नाटी में इन्श्योरेंस एजेण्ट था।'

'कौन-सी कम्पनी के ?'

'दी ग्रेट फ़ेडरल अमरीकन इन्शोरैंस कारपोरेशन इनकारपोरेटिड······।'

'अब भी उसी के एजेण्ट हो ?' जूस ने अपनी छोटी-छोटी आंखें झपकाईं और सामने की एक इमारत की ओर संकेत किया 'यह देखो।'

लाइम ने देखा तो वहां एक अधजली इमारत पर श्री स्टेट फेडरल अमरीकन इन्शोरेंस कारपोरेशन का नाम जगह-जगह से टूटा हुआ नज़र आया। उस इमारत के ऊपर भी अमरीकी झंडा लहरा रहा था और इमारत के बाहर अमरीकी सिपाहियों की एक गारद स्टालिन और कमरसेन की तस्वीरें फाड़ने में लगी हुई थी। 'अरे सचमुच, यह तो वही है, लेकिन मेरी अमरीकन कम्पनी यहां कैसे आ गई ?'

जूस ने मुस्कराकर कहा 'इसके साथ और नाम भी हैं, ध्यान से देखो।'

लाइम अधजले नाम पढ़ने लगा—कैलेफोरनिया चावल गुदाम, एजेन्ट फ़िलिप्स एण्ड फ़िलिप कोरिया कोल एण्ड आयल रिफ़ाइनरीज़ इनकार-पोरेटिड, शिकागो।

लाइम खुशी से चिल्लाया 'अरे यह तो सब अपने नाम हैं। ऐसा मालूम होता है जैसे अमरीका पहले ही से कोरिया में मौजूद था।'

जूस ने कहा, 'इसमें क्या संदेह है। हम पहले भी यहां मौजूद थे और आज भी मौजूद हैं और यहां से कभी नहीं जाएंगे, चाहे शैतान कम्युनिस्ट कुछ ही क्यों न कहें।'

'बिल्कुल' लाइम ने बड़ी दृढ़ता से कहा और उसके जबड़े तन गए। लाइम ताड़ की तरह एक लम्बा अमरीकी था। वह अपनी मां के नाते आधा आयरिश था और आधा जर्मन और बाप के नाते एक चौथाई हब्शी, दो चौथाई मैक्सीकी, एक बटा आठ जिप्सी और बाकी फ्रांसीसी अर्थात् शत प्रतिशत अमरीकी था जो श्वेत रंग की प्रधानता, दुनियां की लिंचिंग और टक्कीन के एटम बम में विश्वास रखता था। बाहर से यह जितना लम्बा था भीतर से उतना ही छोटा था। ऊपर से वह जितना बहादुर था भीतर से उतना ही बुज़दिल, कमीना, ज़ालिम और बेवकूफ़ था।

लड़ाई से सदैव घबराता था लेकिन जब कोई मोर्चा विजय हो

जाता तो विजय का सेहरा लेने सब से आगे होता। जभी तो अभी तक वह जीवित था। उसकी बटालियन के अन्य नौजवान अमरीकी कब के सिओल के महाज़ पर समाप्त हो चुके थे। अब केवल जूस और लाइम बाकी रह गए थे। जूस भी ऊपर से बड़ा मासूम दिखाई देता था लेकिन भीतर से बिल्कुल लाइम जैसा ही था। इसलिए लाइम और जूस दोनों में गाढ़ी छनती थी, बल्कि उन्हें सदैव एक साथ देखकर उनके अन्य साथी प्रायः कहा करते थे 'वह देखो लाइम जूस की बोतल आ रही है।'

एकाएक सामने की इमारत पर पहली मंज़िल के बरामदे में दो अमरीकी सिपाही नज़र आए। उनके हाथ में नीले रंग का कपड़ा था जिसे उन्होंने बरामदे के बाहर लटका दिया ताकि सड़क पर आते-जाते हर अमरीकी सिपाही की नजर उस कपड़े पर पड़ सके। उस नीले कपड़े पर बड़े-बड़े श्वेत अक्षरों में लिखा हुआ था :—

GRAND AUCTION SALE

(बहुत बड़ा नीलाम)

COME AND BUY

(आइये और खरीदिए)

और फिर बरामदे में बहुत से अमरीकी सिपाहियों की सूरतें नज़र आईं। वे सब लोग पी रहे थे, गा रहे थे और ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे थे—'शानदार नीलाम है, खुला बाज़ार आम है, आओ खरीदो, ऐसा माल फिर कभी नहीं मिलेगा।'

लाइम और जूस उसे देखते ही इमारत के भीतर घुस गए और खटा-खट सीढ़ियां चढ़कर पहली मंज़िल पर पहुंच गए। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ा हॉल है जिसके दरवाज़े पर आधे डालर का एक टिकट मिलता है जिसे लेकर भीतर जाना पड़ता है। वे टिकट लेकर भीतर गए। भीतर उन्हीं की तरह के दो तीन सौ सिपाही एक ऊंची स्टेज के गिर्द एकत्रित थे। यह स्टेज हॉल के दक्षिणी कोने में थी और

एक लम्बे क़द के आदमी से भी ऊंची थी । इस स्टेज के एक ओर दरवाज़ा था और दूसरी ओर निकलने का कोई मार्ग न था । स्टेज के ऊपर रस्सों का एक जंगला बांधा गया था और स्टेज बिल्कुल खाली पड़ी थी । हां, सिपाही हॉल में चारों ओर खचाखच भरे हुए चिल्ला रहे थे, गा रहे थे, गालियां बक रहे थे और शराब की बोतलें मुंह से लगाए गटागट पी रहे थे ।

लाइम ने जूस और जूस ने लाइम की ओर आश्चर्य से देखा । फिर जूस ने अपने निकट खड़े एक सिपाही से पूछा :—

'यह क्या तमाशा है—बाक्सिंग ?'

ठिगने क़द के अमरीकी ने, जिसके सामने के दो दांत टूटे हुए थे, सिर हिलाकर कहा 'नाई'—वह बहुत पिए हुए था ।

लाइम ने पूछा 'तो फिर क्या, थियेटर ?'

'नाई ।'

'तो फिर क्या, डान्स ?'

'नाई' ठिगने क़द वाले ने कूक से चलने वाले खिलौने की तरह बिल्कुल पहले जैसी लय पर अपना सिर हिलाकर कहा ।

लाइम ने ठिगने क़द वाले अमरीकी को ज़ोर से झंझोड़ा और क्रोध भरे स्वर में पूछा :—

'तो फिर क्या ?'

'देखते नहीं हो, नीलाम है—Grand Auction.

'किस चीज़ का नीलाम है ?'

'मुझे क्या मालूम, मैं भी तुम्हारी तरह आधा डालर खर्च करके अन्दर आया हूं । यहां स्टेज खाली है । मुझे तो सब कहीं खाली मालूम होता है । सब खाली, खाली स्टेज, खाली आधा डालर, खाली जेब, सब कहीं खाली, मुझे छोड़ दो, मैं थका हुआ हूं ।'

एकाएक हॉल में एक शोर-सा उठा । एक आदमी नीलामघर के मैनेजर का पूरा लिबास पहने स्टेज पर आया और घंटी बजाकर बोला

'एटम बम के बेटो ! आज हमने सिओल पर विजय पाकर जैसे सारे कोरिया पर विजय पाली है। इसी प्रसन्नता में यह नीलाम किया जा रहा है। ऐसा नीलाम आपने जीवन में पहले कभी नहीं देखा होगा। अब देखो और अपनी पाकट खाली कर दो—एटम बम के बेटो !'

इतना कहकर उसने जोर से घंटी बजाई और स्टेज के पश्चिमी कोने की ओर संकेत किया। संकेत पाते ही पश्चिमी दरवाज़ा खुला और उसके भीतर से कोरियाई लड़कियों की एक कतार स्टेज पर आनी शुरू हुई। क्षण भर के लिए स्टेज पर चुप्पी छा गई क्योंकि लड़कियां बिल्कुल नंगी थीं। नग्न शरीर, आंखें नीची, बाल खुले, नंगे पांव, हाथ पीठ पर रस्सियों से बंधे हुए ताकि ये कोरियाई लड़कियां किसी प्रकार भी अपनी नग्नता न छुपा सकें, न अपने मुंह हाथों में छुपा कर, न अपने बाल छातियों पर लहरा कर। आज तन ढकने की कोई सूरत न थी इसलिए गरदनें नंगी थीं जहां प्रेम ने चेरी के फूलों के हार पहनाये थे। वह छातियां नंगी थीं जहां बेज़बान बच्चों ने ममता का रस पिया था। वह कोख नंगी थी जिसके भीतर बीज होता है। बीज के भीतर शगूफा होता है, शगूफे के भीतर फूल होता है और फूल के भीतर फिर बीज होता है। एक सुन्दर निर्माता को बहादुर अमरीकी सिपाहियों ने नंगा कर दिया था और यह रस्सों से बंधी हुई, एशियाई आत्मा अपने शताब्दियों के पतन के दाग अपनी छाती पर लिए हुए विजेताओं के बीच घूम रही थी। यह नीलाम-घर आज ही नहीं, आज से बहुत समय पहले भी सजाया गया था। जहां-जहां अत्याचार ने डेरे डाले थे, चंगेज़ के खेमों में, दमश्क के बाज़ारों में, यूनान की मंडियों में, रोम के एम्फीथियेटरों में, दक्षिणी अमरीका की रियासतों में, हिटलर की जेलों में—जहां-जहां अत्याचार ने डेरे डाले थे वहां यह मासूम आत्मा नग्न की गई थी। नंगे पांव, छलनी छाती, रक्त में डूबी हुई, अपनी पलकों के भीतर नारीत्व की हज़ारों वीरानियां छुपाये। उसने आश्चर्य से उन नीलाम-घरों को देखा था और उनकी वहशी दीवारों से पूछा था, क्या मनुष्य इसलिए उत्पन्न

होता है कि वह औरतों को नंगा करे—बच्चों को अनाथ और बूढ़ों की छातियों में संगीन घोंपे। या इसलिए कि वह एक पुल बनाए, एक पुस्तक लिखे, एक गीत सुनाए और एक चेरी के फूल को उठाकर अपनी प्रेमिका के केशों में टांग दे? लेकिन नीलाम-घर की वहशी दीवारों ने इस प्रेम-भरे प्रश्न का उत्तर सदैव घृणा से दिया था और आज एटम बम के बेटों ने कोरिया के बाजारों में फिर वही नीलाम सजाया था।

हाल में एक क्षण के लिए एकदम चुप्पी छा गई। दूसरे क्षण में सैकड़ों तालियां चीखीं, तालियां बज उठीं और अमरीकी सिपाही हिंस्र प्रसन्नता और हविस की अग्नि से भड़कते गए। 'कम ऑन, जल्दी से बोली शुरू करो।'

'एक डालर! मैं बोली देता हूं।' एक अमरीकी सिपाही ज़ोर से चिल्लाया।

'दो डालर' दूसरा बोला।

'तीन डालर' तीसरा बोला।

'चार डालर···एक दो···एक दो···पांच डालर···एक दो···एक दो।'

बोली शुरू हो गई लेकिन एक लड़की के लिए कोई बीस डालर से अधिक बोली न दे सकता था और डालर के अतिरिक्त अन्य कीमती चीज़ें भी बोली में कबूल कर ली जाती थीं। जैसे घड़ी, फाउन्टेन-पेन, टाई पिन···किसी लड़की की बोली समाप्त होते ही उसके हाथों की रस्सी काट दी जाती और उसे उछालकर स्टेज से नीचे फेंक दिया जाता जहां बहुत-सी ऊपर को उठी हुई बेकरार बांहें उसके नंगे शरीर को दबोच लेतीं और उसे हाथों ही हाथों उछालकर अन्तिम बोली देने वाले तक फेंक देतीं जो उसकी कमर में हाथ डालकर या तो वहीं नाचने लग जाता और या उसे उसी प्रकार बांहों में उठाए हॉल से बाहर ले जाता।

लाइल ने बड़े संतोष से अपनी पतलून की जेबों में हाथ डाले और

जूस की ओर देखकर मुस्कराया। जूस ने उसे आंख मारकर कहा, 'बोली क्यों नहीं देते ?'

लाइम ने कहा, 'अभी अपनी पसन्द की कोई लड़की आई नहीं। जब आएगी बोली देंगे और सबसे बढ़कर देंगे।'

जूस ने कहा, 'तुम कैसी लड़की चाहते हो—हेजल जैसी ?'

'लाइम ने क्रोध से उसे घूरकर कहा, 'शटअप, हेज़ल मेरी प्रेमिका है, उसकी बात मत करो।'

निकट खड़े ठिगने कद के अमरीकी ने स्टेज पर खड़ी एक नंगी कोरियाई लड़की की ओर संकेत करते हुए कहा—'यह भी तो हेज़ल है, राशल है, इज़ाबेला है, मुझे तो इसके और एक अमरीकी लड़की के शरीर में कोई फर्क मालूम नहीं होता।'

लाइम ने घूसा तानकर कहा, 'चुप रहो, तुम कौन होते हो बीच में बोलने वाले।'

उस ठिगने कद वाले अमरीकी ने बड़े थके हुए स्वर में कहा, 'मैं, मैं कोई नहीं हूं, मैं एक मामूली अमरीकी सिपाही हूं, लेकिन मुझे यह हंगामा पसंद नहीं है।'

'पसंद नहीं है तो यहां क्यों खड़े हो, जाओ किसी गिरजे में जाओ··· या बकरी का दूध पीकर भगवान् के गुण गाओ, बास्टर्ड !'

ठिगने कद का अमरीकी वहां से हट गया और लाइम के ध्यान को चाबुक की आवाज ने अपनी ओर खींच लिया। यह चाबुक नीलाम करने वाले ने उस लड़की के शरीर पर मारा था जो रस्सी से बंधी होने पर भी अपने आपको छुड़ाने की कोशिश कर रही थी। उस लड़की का रंग तांबे की तरह सुर्ख था। आंखें सुर्ख और जलती हुई-सी और बाल बहुत घने और लम्बे। वह अपनी कोरियाई भाषा में ऊंचे स्वर में कुछ कह रही थी। कदाचित् अपनी भाषा में उन सिपाहियों को गालियां दे रही थी। मैनेजर का चाबुक फिर उसके शरीर पर पड़ा और एक लम्बी नीली धारी का निशान उसके तांबे की तरह दहकते हुए शरीर पर छोड़

गया । लड़की ने फिर अपनी पूरी शक्ति से दांतों को गले में गाड़कर उसे काट खाया···।

लाइम ने उसे दिलचस्पी से देखा और ऊंचे स्वर में कहा, 'बीस डालर ।'

उसने पहले ही सबसे बड़ी बोली दे दी । बहुत से सिपाही उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगे ।

लाइम ने कहा, 'हां-हां क्या देखते हो, बोली मैंने दी है, लड़की को मेरी ओर फेंको ।'

'बीस डालर और एक सोने की घड़ी' सारजंट कार्टन पिछले महायुद्ध का पेशावर सिपाही था । कद छै फुट से ऊपर निकलता हुआ, बैल की-सी गर्दन, आंखें मैली, दांत मैले, दिल मैला, रूह मैली और मैली रूह वैरी फरिश्ते ।

लाइम ने सारजंट कार्टन की ओर क्रोध से देखते हुए बोली बढ़ाई 'बीस डालर और एक सोने की घड़ी और एक फाउन्टेन-पेन ।'

सारजंट कार्टन बोला, 'बीस डालर और एक सोने की घड़ी, एक फाउन्टेन-पेन और एक सोने की अंगूठी' । लाइम ने तुरन्त कहा, 'बीस डालर, सोने की घड़ी, फाउन्टेन पेन, सोने की अंगूठी और मेरी पतलून की पेटी जिस पर चांदी का बकल लगा हुआ है । फेंको इधर लड़की को नहीं तो मैं पतलून ऊपर फेंकता हूं ।'

बहुत से लोग हंस पड़े और अन्तिम बोली लाइम ही की रही और लड़की उसकी ओर फेंक दी गई । लाइम ने उस लड़ती हुई, झुंझलाती हुई, चीखती हुई लड़की को अपनी मजबूत बाहों में थामकर उसे दो चांटे लगाकर राम कर लिया और अब वह उस लड़की को उठाकर भीड़ से बाहर आने ही को था कि पश्चिमी दरवाजे से एक हब्शी दौड़ता-दौड़ता आया और स्टेज पर चढ़कर हांफते हुए बोला—

'साथियो, यह ठीक नहीं है ।'

'क्या ठीक नहीं है, हब्शी ?' किसीने पूछा ।

'यह नीलाम-घर'''इसे बन्द कर दो मित्रो! बहुत समय हुआ दक्षिणी अमरीका की रियासतों में इसी तरह के नीलाम-घर बनाए गए थे। मित्रो! जानते हो, हमने उस नीलाम-घर की कितनी बड़ी कीमत अदा की है। मैं कहता हूं'''।'

'Dirty Nigger' सारजंट कार्टन ज़ोर से चिल्लाया।

'मैं कहता हूं इस हब्शी कुत्ते को स्टेज पर से हटा दो, हॉल में से एक दम' बहुत-सी आवाजें आईं।

'मैं नहीं हटूंगा' हब्शी सिपाही ने चिल्लाकर कहा, 'यह ठीक नहीं है, यह गलत है, यह हमारी सभ्यता के विपरीत है।'

'सभ्यता!' बहुत से सिपाही ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगे, 'साला सुर्ख है, कम्युनिस्ट है।'

हब्शी सिपाही ने अपने दोनों हाथ फैला दिए और अपने सिर को ऊंचा उठाकर कहने लगा 'साथियो! मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। मैं एक मामूली अमरीकी शहरी हूं। मैं हारलम का रहने वाला हूं। हारलम की सातवीं गली में मेरी मां रहती है। मेरे दो छोटे-छोटे भाई हैं। उसी गली के अन्तिम सिरे पर जीन का मकान है। जीन बेतहाशा हंसती रहती है। जीन जो हर समय हापकार्न खाती रहती है, जीन जो मेरी मंगेतर है, जीन जो बिल्कुल इन्हीं कोरियाई लड़कियों की तरह है। मेरी मंगेतर का सम्मान करो मित्रो!'

'बिल्कुल कम्युनिस्ट है' सारजंट ने पिस्तौल निकाल लिया और चिल्लाकर कहने लगा 'इसे स्टेज से नीचे फैंक दो।'

हब्शी बोला 'मैं कम्युनिस्ट नहीं हूं। मैंने मार्क्स नहीं पढ़ा, मैंने केवल अंजील पढ़ी है। मुझे आज तक किसी कम्युनिस्ट से हाथ मिलाने का भी अवसर नहीं मिला, भूख से कई बार हाथ मिला चुका हूं। मुझे नहीं मालूम कि कम्युनिज़्म क्या बला है? हां मेरे गिरजा के सफेद पादरी ने मुझ से इतना अवश्य कहा था कि जो अच्छे आदमी होते हैं वे औरत का आदर अवश्य करते हैं क्योंकि औरत हमारी मां होती है, बहिन होती

है, मंगेतर होती है। औरत हमारी सभ्यता की इज्जत होती है। उस सफ़ेद पादरी ने मुझ से यह कहा था।'

"बिल्कुल कम्युनिस्टों की सी बातें करता है।' लाइम ने घूंसा तान कर कहा।

'यह सुर्ख है, इसे जला डालो, स्टेज पर से नीचे लुढ़का दो।'

हब्शी सिपाही की चौड़ी चकली छाती एक विचित्र प्रकार के गर्व से तन गई। उसने धीरे से, लेकिन बड़े गहरे विश्वास के साथ, कहा :—

'नहीं भाइयो! मैं यहां से नहीं हटूंगा जब तक तुम इस नीलामघर को बन्द न करोगे। मुझे थोड़ा-सा अमरीकी इतिहास याद है। इसे दो सौ वर्ष भी नहीं हुए, जब अफ्रीका के घने जंगलों वाले तट पर जहाजों ने लंगर डाले थे और हरे-हरे तोतों वाले, नीली चिड़ियों, चारखाने जराफ़ों और चुपचाप झीलों वाले अफ्रीकी वातावरण में से मेरे पूर्वजों को उनके घरों से जबर्दस्ती पकड़कर उन जहाजों के श्वेत मालिक उन्हें अमरीका ले गए थे, वहां मिसिसिपी की दरियाई नावों के डेक पर ऐसे ही नीलाम-घर लगे थे। बिल्कुल ऐसा ही मैनेजर था। ऐसे ही उसके हाथ में चाबुक था। उस चाबुक से काले शरीर पर इसी प्रकार खून की धारी उभर आती थी। मित्रो! उस धारी की हमने बहुत बड़ी कीमत अदा की है। तीन वर्ष के अमरीकी गृह-युद्ध में हजारों माओं के लाल मर गए। लाखों औरतें विधवा हो गई और उत्तरी और दक्षिणी अमरीका में सदैव के लिए घृणा की दीवार खड़ी हो गई। मित्रो! अब उस खतरनाक तमाशे को दोबारा शुरू न करो। मैं तुम से सभ्यता के नाम पर नहीं अमरीकी इतिहास के नाम पर कहता हूं, यह नीलाम-घर अब नहीं चल सकता। यह कोरिया नीलाम-घर मिट जाएगा। जैसे चंगेज का नीलाम-घर मिट गया, जैसे हलाकू का मिट गया, जैसे रोम, यूनान, दमश्क, बर्लिन—ऐसे ही यह नीलाम-घर भी मिट जाएगा। यह अत्याचार मिट जाएगा लेकिन एशिया की औरत सदैव जीवित रहेगी।

एकाएक हॉल में तीन गोलियाँ चलने का स्वर सुनाई दिया और लम्बे, चौड़े चकले हब्शी सिपाही का शरीर ज़ोर से कांपा। उसके फैले हुए हाथ दोनों ओर रस्सों की पकड़ में आ गए। उसकी गरदन एक ओर लुढ़क गई जैसे आज से लगभग दो हज़ार वर्ष पूर्व यसूमसीह की लुढ़क गई थी। फिर उसका भारी-भरकम शरीर तड़प-तड़प कर रस्सों पर झुक गया और वहां से औंधा होकर नीचे सिपाहियों पर धड़ाम से जा गिरा। उसके गिरते ही हाल में कहकहे गूंजने लगे और रक्त की एक धारा स्टेज को सुर्ख करती हुई नीचे फर्श को सुर्ख करती चली गई।

कुछ सिपाहियों ने उसकी लाश को उठाकर बाहर बरामदे में फैंक दिया और नीलाम की बोली फिर से शुरू हो गई।

'एक डालर एक लड़की, एक घड़ी एक लड़की, एक टाइ-पिन एक लड़की, एक चांदी का सिग्रेट-केस एक लड़की !'

नीलाम बढ़ता गया। स्टेज खाली होती गई। स्टेज के पीछे अमरीकी झंडा मुस्कराता गया। झंडा—जिस पर तारे और धारियां थीं। तारे और गहरी नीली ज़मीन पर श्वेत धारियां। तारे और सोने जैसे शरीर पर नीली धारियां। तारे और चाबुकें……!

थोड़े समय के बाद उसी इमारत के एक छोटे से कमरे में लाइम, सारजंट कार्टन और जूस तीन नंगी कोरियाई लड़कियों को अपनी रानों पर बिठाए ताश खेल रहे थे और शराब पी रहे थे। खेल दिलचस्प था, लड़कियां भी अच्छी थीं। शराब भी बुरी नहीं थी और अब तो वह अड़ियल लड़की भी लाइम की गोद में चुप-चाप बैठी थी। हां कभी-कभी उसके गिलाफी पपोटों के भीतर से एक नज़र बिजली के कौंदे की तरह लपकती हुई बाहर आती और दूसरे क्षण में वह बिजली फिर कहीं भीतर

ही गायब हो जाती। सारजंट कार्टन ने एकाएक ताश के पत्ते मेज़ पर फेंककर कहा 'जाने दो, इस खेल में मज़ा नहीं आ रहा।' 'मुझे तो बहुत अच्छा लग रहा है' लाइम बोला। कार्टन ने कहा 'मैं गुलामों का खेल खेलना चाहता हूं जिसमें गुलाम बेगम से बड़ा होता है।'

लाइम ने पूछा 'लेकिन यह कैसे हो सकता है, ताश में तो सदैव बेगम गुलाम से बड़ी होती है।'

कार्टन ने कहा 'यह नया खेल है। पिछली जंग में हमने इसे नाज़ी कैदियों से सीखा था। इस खेल में बेगम गुलाम से छोटी होती है—क्यों जूस ?'

जूस ने कहा 'हां लेकिन इसके लिए तो चार आदमी चाहिएं और हम तीन हैं।'

कार्टन ने लाइम की गोद में बैठी हुई कोरियाई लड़की की ओर ललचाई हुई नज़रों से देखकर कहा 'कहने को तो हम छः हैं लेकिन ये लड़कियां हमारा खेल नहीं जानतीं। यही तो मुसीबत है।'

लाइम ने कहा 'मैं समझ गया सारजंट तुम क्या चाहते हो ?'

'क्या ?' सारजंट ने पूछा।

लाइम ने एक शैतानी मुस्कराहट के साथ कहा 'तुम जो चीज़ बोली देकर प्राप्त नहीं कर सके उसे ताश के खेल से जीतना चाहते हो, ठीक है ना ?'

सारजंट ने हां में सिर हिलाया।

लाइम ने धीरे से कहा 'मुझे मंजूर है।'

'लेकिन वह चौथा पार्टनर......?' जूस ने पूछा।

सारजंट उठकर दरवाज़े के बाहर आ गया। बाहर वही ठिगने कद का सिपाही, एक कोरियाई लड़की को अपना लम्बा कोट ओढ़ाए, धीरे-धीरे, सिर झुकाए चला जा रहा था। सारजंट ने उसे आवाज़ दी 'ए ब्लडी'। ठिगने कद वाले अमरीकी ने मुड़कर सारजंट की ओर देखा, सारजंट ने उसे अपनी ओर बुलाया। ठिगने कद वाला अपनी कोरियाई

लड़की को लिये उसकी ओर वढ़ा। सारजंट ने उससे पूछा 'इसे कोट क्यों ओढ़ा रखा है ?"

'यह कोट मेरा है' ठिगने कद वाले ने उत्तर दिया।

'लेकिन यह कोट इस काम के लिए नहीं है, निकालो इसे।' सारजंट ने कहा और कहते-कहते स्वयं ही उस कोरियाई लड़की का कोट उतार कर उसे फिर नंगा कर दिया। इतने में लाइम भी दरवाज़े पर आ गया। उसने ठिगने कद वाले को देखते ही वड़ी घृणा से कहा 'तुम्हें तो वह हंगामा पसन्द नहीं था, फिर तुम कैसे इस नंगी लड़की के साथ घूम रहे हो ?'

ठिगने कद वाला मुस्कराया। उसके सामने के दो दांत गायव थे। धीरे से वोला 'मैं भी सव के साथ हूं।'

जूस ने दरवाजा खटखटाते हुए कहा 'तो भीतर आ जाओ, ताश खेलेंगे......।

'कौन-सा खेल ?' ठिगने क़द वाले अमरीकी ने भीतर आते हुए पूछा।

'वही जिसमें गुलाम वेगमों से वड़े होते हैं।'

वह चौथी कुर्सी पर अपनी कोरियाई लड़की के साथ वैठ गया। जूस के पूछने पर उसने अपना नाम 'सिम्पसन' वताया।

लाइम ने पूछा 'सिम्पसन ! तुम्हारा कहीं उस वड़े सिम्पसन घराने से तो कोई संवंध नहीं ?'

'है !'

'क्या संवंध है ?'

'वही गुलामों का संवंध है। वे मालिक हैं मैं गुलाम हूं। हम सव गुलाम हैं। सव छोटे सिम्पसन वड़े सिम्पसनों के गुलाम हैं। अच्छा आओ, ताश फेंटो। लाओ मैं काटता हूं। अच्छा सारजंट, वताओ तुम किसके गुलाम हो ?'

सारजंट ने कहा 'मैं ईंट का गुलाम हूं' और फिर उसने अपनी गोद

में बैठी हुई लड़की की ओर संकेत करके कहा 'और यह मेरी गोद में ईंट की बेगम है।'

ज़ूस ने कहा 'मैं चिड़िया का गुलाम हूं और यह मेरी चिड़िया है।'

ठिगने कद वाले ने कहा 'देखना कहीं फुर से उड़ न जाय।'

लाइम ने हंसकर कहा 'यह मेरी पान की बेगम है जिस पर सारजंट की नजर है और मैं इसका गुलाम हूं।' फिर उसने सिम्पसन की ओर मुड़कर कहा, 'अब तुम्हारे लिए तो पसन्द का सवाल ही नहीं रहा। तुम तो हुक्म के गुलाम हो।'

सिम्पसन ने कहा 'गुलामों के लिए पसन्द का सवाल ही कहां पैदा होता है, वह तो हमेशा हुक्म के गुलाम होते हैं। चाहे वह मेकार्थर का हुक्म हो या ट्रूमैन का, या उससे किसी बड़े सेठ का हुक्म हो जिसका बैंकों, तेल के चश्मों और लोहे के कारखानों पर कब्ज़ा हो।'

कार्टन ने अपनी पेटी ढीली करते हुए कहा 'अब अपनी गन्दी राजनीति बन्द करो और खेल शुरू करो।'

सिम्पसन ने कहा, 'मैं हाज़िर हूं। चलिये, लेकिन खेल की शर्त क्या है?'

कार्टन ने कहा, 'शर्त में ये लड़कियां बदी जाएंगी। तुम हुकम के गुलाम हो और यदि तुम्हारे पास हुकम की बेगम आती है तो यह लड़की तुम्हारे ही पास रहती है लेकिन यदि हुकम की बेगम लाइम के पास निकल आती है तो यह लड़की तुम्हारी गोद से उठकर लाइम के पास चली जाएगी। इसी प्रकार मैं ईंट का गुलाम हूं लेकिन यदि मेरे पास पान की बेगम निकल आती है...' 'जिसका कोई चांस नहीं' लाइम ने बात काटकर कहा।

कार्टन ने सुर्ख होकर कहा, 'तो पान की बेगम मेरी हो जाएगी। इस प्रकार यदि किसी के पास चार बेगमें इकट्ठी हो जाएं तो वह चारों लड़कियां जीत लेगा। ग्रांड नीलाम!'

जूस ने प्रसन्न होकर कहा, 'बहुत अच्छा खेल है। अब जल्दी से ताश फैंटो।'

वे लोग ताश फैंटकर खेल में मग्न हो गए। काफी देर तक किसी के पास कोई बेगम न निकली। फिर लाइम के पास ईंट की बेगम निकल आई और सारजंट को अपनी गोद खाली करनी पड़ी। फिर सिम्पसन के पास चिड़िया की बेगम निकल आई और सिम्पसन ने जूस से कहा, 'मैंने कहा था ना, तुम्हारी चिड़िया फुर से उड़ जाएगी।'

उसके तुरंत ही बाद सिम्पसन को अपनी लड़की से हाथ धोने पड़े और वह उठकर सारजंट की गोद में चली गई। उसके कुछ समय बाद सारजंट के पास ईंट की बेगम निकल आई और अब उसके पास दो लड़कियां हो गईं, लेकिन जो बेगम वह अपने पत्तों से निकालना चाहता था वह उसके पास न आती थी और लाइम बराबर मुस्करा रहा था और सारजंट को ताने दे रहा था 'पान की बेगम अपने गुलाम के पास बहुत प्रसन्न है, वह तुम्हारे पत्तों में कभी न आएगी, सारजंट!'

एकाएक बाहर एक जोर का धमाका हुआ और सारजंट, लाइम और जूस उठकर तुरन्त बाहर चले गए। यद्यपि सिओल विजय हो चुका था लेकिन शहर के बीच में एक मील के क्षेत्रफल में अभी तक गलियों, कूचों और बाज़ारों और इमारतों के भीतर लड़ाई जारी थी और शहर के अन्य भागों में भी कहीं-कहीं गोरीला कोरियाओं के घोंसले अपनी मशीनगनों से अमरीकी जानों का नुकसान कर रहे थे....

जब सारजंट, लाइम और जूस वापस भीतर आए तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे भीतर का वातावरण थोड़ा-सा बदल चुका है। उन्होंने सन्देह की नजर से सिम्पसन की ओर देखा, लेकिन सिम्पसन चुपचाप अपने पत्ते उलटने में व्यस्त था। लड़कियां चुपचाप अपनी-अपनी कुरसी पर बैठी थीं।

लाइम को संदेह हुआ जैसे उसने अपनी पान की बेगम के चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कराहट की झलक देखी है; लेकिन नहीं, यह उसका

भ्रम था। उसने अपनी गुलामी कबूल कर ली थी और अब बड़ी गंभीरता से फिर उसकी गोद में बैठ गई थी।

सिम्पसन ने पूछा, 'धामाका कैसा था ?'

सारजंट ने कहा, 'सामने के बड़े बाज़ार के चौक में एक बड़ी इमारत को हमारे जहाज़ों ने बमबारी से उड़ा दिया है। उसमें एक सौ गोरीले लगातार सात दिनों से लड़ रहे थे और उनपर विजय पाने की कोई सूरत न थी—सिवाय इसके कि उन्हें बिल्कुल खत्म कर दिया जाए।'

'बहुत खूब' सिम्पसन ने कहा, 'अब आगे चलो। भगवान की कृपा है कि इस इमारत पर अपना पूरा कब्ज़ा हो चुका है। यहां कोई सुर्ख नहीं है।'

खेल फिर शुरू हुआ। कभी सारजंट के पास दो लड़कियां हो जातीं कभी लाइम के पास, कभी जूस के पास। एक बार तो सारजंट के पास तीन लड़कियां हो गईं, लेकिन पान की बेगम उसके पास कभी न निकली और वह बड़ी झुंझलाहट के साथ खेलने लगा। अब लाइम बात-बात में उसे ताने देने लगा—'जाने क्या बात है पान की बेगम तुम्हारे पास नहीं निकलती।' पान की बेगम अब तक जूस के पास पहुंच चुकी थी और सिम्पसन के पास भी, लेकिन सारजंट की गोद पान की बेगम से खाली थी। समय गुज़रता जा रहा था। संध्या का अंधकार बढ़ने लगा। बाहर से गोरीला मशीन-गनों के घोंसलों से आवाज़ें तेज़तर हो गई थीं, लेकिन सारजंट के पास पान की बेगम न आई। उसके तीन साथियों ने उसे खेल बन्द कर देने को कहा, लेकिन सारजंट नहीं माना। आखिर लाइम ने उससे कहा, 'जाओ सारजंट, मैं अपनी पान की बेगम तुम्हें मुफ्त में देता हूं', लेकिन सारजंट को इसमें अपना अपमान नज़र आया और वह और भी गंभीरता से खेलने लगा। आखिर जब संध्या बहुत गहरी हो गई तो सिम्पसन ने एकाएक कहा, 'भई, बहुत हो चुका, अब खेल का अंतिम दाव चलो और बात खत्म करो'। सारजंट ने कहा, 'अंतिम दाव सही, लेकिन पत्ते मैं काटूंगा।'

लाइम मुस्कराते हुए ताश फैंट रहा था, सिम्पसन ने कहा, 'पत्ते फैंटने की बारी तुम्हारी है लेकिन मुझे फैंटने दो।'

'क्यों ?' लाइम बोला।

सिम्पसन ने मुस्करा कर कहा, 'अन्तिम दाव है, बात मान जाओ।'

लाइम ने ताश को सिम्पसन के हवाले कर दिया। सिम्पसन ने सारजंट की ओर देखा, लाइम की ओर देखा। दोनों की नज़रें ताश पर गड़ी थीं। सिम्पसन धीरे-धीरे ताश फैंटने लगा।

लाइम ने कहा, 'शफल।'

सारजंट बोला, 'री शफल।'

सिम्पसन ने ताश को फैंटकर मेज़ पर रख दिया। सारजंट ने कहा, 'मैं काटूंगा।'

लाइम ने श्वास रोककर धीरे से सिर हिलाया।

सारजंट ने ताश काटकर पत्ता उठाया। पान की बेगम थी।

लाइम खड़ा हो गया। उसने भारी आवाज़ में कहा, 'यह धोखा है सिम्पसन तुम से मिल गया है। यह जाल-साज़ी हुई है।'

'इसका क्या सबूत है' सारजंट ने चिल्लाकर कहा। अब वह भी कुरसी पर से उठ खड़ा हुआ था।

'इसका सबूत यह है' लाइम ने कहा 'कि मैंने अन्तिम दाव समझकर पान की बेगम का पत्ता पहले ही निकाल लिया था।'

'यह देखो', लाइम ने अपने हाथ में पान की बेगम का पत्ता दिखाया।

सिम्पसन बोला 'मुझे मालूम था। इसलिए मैंने जालसाजी पर जाल-साज़ी की और एक दूसरी पान की बेगम सारजंट के पत्तों में रख दी······मैं सदैव जालसाज़ों के साथ जालसाज़ी करता हूं······उधर घर पर मेरा यही पेशा था।'

लाइम ने पिस्तौल निकाल लिया, लेकिन बिल्कुल उसी समय दरवाज़े पर एक अमरीकी सिपाही लड़खड़ा कर गिर पड़ा और गिरते हुए बोला

'गोरिला इमारत के भीतर आ पहुंचे हैं। उन्होंने नीचे की गार्द का सफ़ाया कर दिया है, जल्दी से भागो।'

लाइम, कार्टन, जूस, सिम्पसन, सभी, लड़कियां छोड़कर भागने लगे। इतने में पान की बेगम ने चिल्लाकर कहा 'ठहरो।'

अमरीकी सिपाहियों ने मुड़कर देखा। पान की बेगम के हाथ में पिस्तौल था। क्षण भर के लिए वह बिल्कुल आश्चर्य-चकित से खड़े रह गए। पान की बेगम ने चिल्लाकर टूटी-फूटी अंग्रेज़ी भाषा में कहा 'तुम ने सोचा था की इस इमारत में कोई सुर्ख नहीं है लेकिन तुम भूल गए कि पान की बेगम का रंग सदैव सुर्ख होता है।'

इतना कहकर उसने लाइम की छाती पर पिस्तौल चला दिया। ठीक उसी समय लाइम ने भी गोली चलाई और जूस और कार्टन ने भी और उसी समय उधर सीढ़ियों से भी किसी के गोली चलाने का स्वर सुनाई दिया।

थोड़े समय के बाद सब ओर सन्नाटा छा गया! गोरिल्लाओं ने सारी इमारत पर फिर से कब्ज़ा कर लिया और जगह-जगह मशीन-गनों के घोंसले जमा दिए। सीढ़ियों के निकट ही दरवाज़े पर कार्टन, सिम्पसन, जूस और लाइम की लाशें पड़ी थीं और दरवाज़े पर एक और अमरीकी सिपाही की लाश थी और भीतर वे तीन कोरियाई लड़कियां भी मुर्दा पड़ी थीं जिन्हें उनके अमरीकी खरीदारों ने नीलाम-घर से खरीदा था और इस संसार से जाते हुए उनका भी अंत कर दिया था। चौथी लड़की पान की बेगम भी सख्त घायल हो गई थी और उसके ऊपर एक गोरिल्ला झुका हुआ था और उसके कन्धे झंझोड़-झंझोड़ कर कह रहा था। 'मिगं, मिगं! उठो, होश में आओ, मैं आ गया, तुम्हारा हकहू। मिगं! आंखें खोलो एक क्षण के लिए......'

मिगं ने आंखें खोल कर हकहू की ओर देखा। उसके पतले ओठों पर एक अत्यन्त दर्द-भरी मुस्कराहट आई। उसने धीरे से अपनी बांह उठा-कर हकहू के कंधे पर रख दी और कोमल स्वर में बोली, 'हकहू...मुझे

क्षमा कर दो। मैंने अंतिम दम तक तुम्हारा कहना नहीं माना और गोरिल्ला सेना में भरती होने से इन्कार कर दिया, मुझे इस खतरे का पता न था……'

हकहू ने परेशान होकर कहा 'लेकिन तुम यहां कैसे आ गई मिगं ?'

मिगं बोली 'मैं आई नहीं, लाई गई हूं। जबरदस्ती। मेरी तरह और भी चार सौ लड़कियां थीं।'

'चार सौ ?' हकहू ने बड़ी परेशानी से पूछा।

'हां हकहू हम चार सौ थीं।' मिगं ने धीरे से रुक-रुक कर कहा।

हकहू ने पूछा 'फिर क्या हुआ ?'

मिगं ने कहा 'वे मुझे बालों से पकड़ कर घर से बाहर घसीट लाए। पहले मैं नंगी की गई, फिर एक नीलाम-घर में जानवर की तरह बेची गई, फिर ताश के पत्तों की तरह खेली गई। हकहू ! क्या हम लोग जानवर हैं ? ताश के पत्ते हैं……?

हकहू मौन रहा। उसके हृदय में तूफान उठ रहे थे। लेकिन वह उस समय बोल न सकता था। वह सिर से पांव तक कांप रहा था।

मिगं फिर धीरे से बोली 'लेकिन मैंने बदला ले लिया है हकहू ! तुम्हारी मिगं ने उसके खरीदने वाले को अपनी गोली का निशाना बना दिया। वे लोग चुपचाप बैठे थे। मैंने धीरे से एक की पेटी में से पिस्तौल निकाल लिया…उसे पता भी न चला…

हकहू के पथरीले चेहरे पर प्रसन्नता की किरनें दौड़ गईं। उसने मिगं के सिर को सहारा देकर बड़े प्यार से कहा 'मिगं, मैं जानता था कि तुझे कभी न कभी गोरिल्ला बनना पड़ेगा। काश ! तू पहले ही बन जाती। कितनी गहरी खंदकों में, कीचड़ से भरे हुए गढ़ों में और पहाड़ों की गारों में मुझे तेरी याद आई है, लेकिन हर बार मैंने तेरी याद को घृणा की गाली देकर, अपने भीतर से बाहर फेंक दिया…'

मिगं जो गोरिल्ला न बन सकी। मिगं जो अपने देश के लिए लड़ न सकी।

मिगं का दूसरा हाथ भी ऊपर उठ गया। उसने धीरे से कहा 'अब तो अपनी मिगं को क्षमा कर दो। वह इस संसार से जा रही है।'

मिगं के ओठों से रक्त बह निकला, रक्त और थूक जिसे हकहू ने अपने हाथों से पोंछ दिया और मिगं की आंखें फिर बन्द हो गई और वह बड़ी कमजोर आवाज़ में बोली : 'याद है हकहू, जब तुम पहली बार हमारे गांव में आए थे और मैं अपने घर के बाहर सफेदे के झुंड तले तुम्हें मिली थी और तुमने शांति की अपील का कागज़ मेरे सामने बढ़ा दिया था।'

'याद है' हकहू ने कहा '······वे बहार के दिन थे। तुम्हारे गांव में आड़ू के वृक्षों पर श्वेत-श्वेत फूल खिले हुए थे। वही फूल तुम्हारे बालों में भी चमक रहे थे।'

'और वह चांदनी रात भी याद है' मिगं बोली 'जब प्रेम हमारे दिलों से बांसुरी का संगीत बनकर फूटा। तुम बांसुरी बजा रहे थे। मैं तुम्हारी गोद में थी और हमारे सिर के ऊपर शमशाद के पत्ते झूल रहे थे, वे पत्ते जिनका रंग एक ओर से सब्ज़ होता है, दूसरी ओर से चांद की तरह श्वेत होता है और आंखों में कभी पीला झलकता है और कभी चांद···'

'याद है' हकहू ने भर्राए हुए स्वर में कहा 'उस समय अभी अमरीकी सिपाहियों ने उस गांव को जलाया नहीं था···'

मिगं ने आंखें खोलकर हकहू की ओर देखा और बिल्कुल मद्धम स्वर में कहा 'और उस रात हमने सोचा था कि संसार में शांति होगी और हम अपना छोटा-सा घर बसाएंगे, जिसके भीतर एक छोटा-सा बुत होगा। एक छोटा-सा बच्चा होगा। हमारा पहला बच्चा। और आंगन में चेरी के फूल होंगे और तुम मेरे हाथ की पकी हुई रोटी खाकर धान के खेतों में काम करने जाओगे······'

और हकहू को वह सब कुछ याद आया और उसकी जवानी की तस्वीर, उसके प्रेम का प्रकाश। एक बन्दी चक्कर में एक दिए की तरह जलता नजर आया फिर वायु के एक ही झोंके से उसकी जवानी बुझ

गई, उसका प्रेम मर गया और उसे लगा जैसे मिगं के हाथ ठण्डे पड़ गए हैं और उसकी आंखें खुली की खुली रह गई हैं, वे आंखें जो हकहू के प्रेम, छोटे से घर, शमशाद के वृक्ष, बच्चों की हंसी और चेरी के फूलों के लिए तरसती हुई खुली की खुली रह गईं। और हकहू को लगा जैसे उसके अपने गाल गीले हो गए हैं और उसने धीरे से अपने खुरदरे हाथ से अपने गालों की नमी को दूर किया। धीरे से मिगं की आंखें बन्द कर दीं, धीरे से उसके चेहरे पर अपनी फौजी टोपी डाल दी, धीरे से अपना कोट उतार कर उसके शरीर पर डाल दिया और धीरे-धीरे उल्टे पांव कमरे से बाहर निकल आया।

बाहर बरामदे में अक्तूबर की शरद रात थी। नग्न आकाश पर तारे ठिठुर रहे थे। कहीं-कहीं कोई जोर का धमाका होता। कहीं कोई इमारत गिर जाती और फिर लाल शोले क्षितिज पर लहराने लगते। फिर दूर से और नजदीक से मशीनगनों के चलने की आवाज़ें आतीं और फिर एकदम सन्नाटा छा जाता। ऐसे ही सन्नाटे के क्षणों में हकहू ने बरामदे में खड़े-खड़े एक क्षण के लिए सोचा, आज मिगं बहुत दूर चली गई है और मेरे कोरिया के लिए काली अन्धेरी रात है। लेकिन क्या संसार के लोग अपने घरों में बैठे हुए यह कभी नहीं सोचते हैं कि किस तरह आज कोरिया अपने रक्त से शांति की अपील पर हस्ताक्षर कर रहा है।

हकहू ने घूरकर रात के अन्धकार में देखा जैसे वह उस काली भयानक रात के अंधेरे विस्तार से अपना उत्तर चाहता हो। एकाएक रात का सन्नाटा गोरिल्ला मशीन-गनों के शोर से भंग हो गया और जैसे हकहू को अपना उत्तर मिल गया और उसने मुस्करा कर अपनी गन के जबड़े में कारतूस की पेटी अच्छी तरह जमा दी और अपने मोर्चे पर जम कर बैठ गया।

उसने धीरे-धीरे अपने कारतूसों को गिना जैसे वह मोतियों के दाने गिन रहा हो। उन्हें गिनते-गिनते उसके ओठों पर एक गर्वपूर्ण मुस्कराहट उभर आई और उसने अपने आप से कहा—हम न जानवर हैं, न ताश के पत्ते। हम कोरिया के आज़ाद मनुष्य हैं। दुश्मन हमारे देश के कोने-कोने पर कब्ज़ा कर सकता है लेकिन हमारे दिल का एक कोना भी उसे नहीं मिल सकता और जब तक हमारे दिल आज़ाद हैं हमारा कोरिया आज़ाद रहेगा। बेशक आज रात काली है लेकिन इसमें कहीं-कहीं तारे भी हैं। बेशक आज सिओल जल रहा है लेकिन सिओल जलते हुए भी लड़ रहा है। सिओल को सामराजी कभी नहीं जीत सकते। सिओल कोरिया का दिल है।

: ५ :

मैं इन्तज़ार करूंगा

ज़ीई देखने में बड़ी नाज़ुक और सुबक थी। उसकी सुन्दरता मिंग वंश की किसी पुरानी चीनी सुराही की तरह थी जो किसी अमीर घर के फूलदार ताक में या ऊंचे-ऊंचे शीशों वाले दरीचे में अपना अछूतापन लिए जगमगा रही हो। पहले दिन जब मैं कागज़ के फूल बेचने निकला तो मुझे वह बिलकुल इसी तरह नज़र आई जिस तरह मैंने अभी बयान किया है। वह अपने बूढ़े बाप हांग के साथ क्राफोर्ड मार्केट के तिराहे पर कागज़ के फूल, शगूफे, बेलें, गमले, टहनियां, टोकरियां, टोपियां और पंखे उठाए खड़ी थी। शरद ऋतु थी और उसने नीले रंग की एक सदरी पहन रखी थी और नीले रंग का एक पायजामा जिसमें भी रुई की तह सिली हुई थी। उसके पांव बंधे हुए नहीं थे अर्थात् वह उन पुरानी चीनी औरतों में से नहीं थी जिनकी चाल देखकर सदैव सरकस के तने हुए रस्से का ख्याल आता है जिस पर सरकस वालियां छाता हाथ में लेकर अपना संतुलन कायम रखने की कोशिश किया करती हैं।

बूढ़े हांग का चेहरा एक सूखे हुए सीताफल की तरह था। संसार के ऊंच-नीच ने उसे अच्छी तरह कूट-पीटकर उसपर तरह-तरह के निशान बना दिए थे। उसके चेहरे को देखकर आप एशिया के पिछले पचास वर्ष का इतिहास पढ़ सकते हैं। आंखों में भय और चालाकी और अन्धी मूर्खता! आंखों के गिर्द स्याह हलके और झुर्रियों की रेखाएं। पराधीनता

की ज़ंजीर-दर-ज़ंजीर। बाएं गाल पर एक घाव का स्याह निशान जो गाल की हड्डी से शुरू होकर जबड़े तक चला गया था। यह घाव उसे हांगकांग में मिला था जब रिक्शा को धीमा चलाने के दोष में उसे एक गोरे ने धर के पीटा था—ठोकरों से, मुक्कों से और चाबुक से। ऐसे-ऐसे उसकी पीठ पर और शरीर के अन्य भागों पर अनेक निशान थे। अत्याचार के इतिहास के काले संगे-मील जो उसके जीवन में एक शिकारी की तरह उभरे और एक कसाई की तरह अपनी निर्दयता के चिह्न छोड़कर आगे चले गए। बहार कैसे आती है, शगूफे कैसे फूटते हैं, फूल कैसे खिलते हैं, फूलों से बोझिल टहनी कैसे सिर झुकाती है—इन चीज़ों का उसे कुछ पता न था। उसके जीवन ने पहले तो एक बहुत बड़ी भूख देखी, फिर एक बहुत बड़ी चट्टान देखी, फिर एक बहुत बड़ा मरुस्थल देखा। और जब वह यहां तक पहुंचा तो उसके साहस ने उसे जवाब दे दिया और उसने सोच लिया कि संघर्ष करना व्यर्थ है। जीवन ऐसा है और ऐसा ही रहेगा। इसमें अनगिनत लोग पिसते हैं और गिनती के लोग मज़े करते हैं। गिनती के लोग इज़्ज़त पाते हैं और अनगिनत लोग बेइज़्ज़ती सहते हैं। गिनती के लोग अत्याचार करते हैं और अनगिनत लोग अत्याचार सहते हैं। और इसका कोई हल नहीं है, क्योंकि महान् देवताओं ने जो आकाश के ऊपर रहते हैं, यह जीवन ऐसा ही बनाया है। इसमें परिवर्तन उत्पन्न करना भी पाप है और जब उसने यह सोच लिया तो उसने अपने बादबान गिरा दिए, अपना मस्तूल झुका दिया और अपनी नाव को खींचकर बम्बई के तट पर ले आया। अब वह दस वर्ष से बम्बई के एक गन्दे मुहल्ले कमाठी पुरा में रहता था, अफ़ीम खाता था, चंडू पीता था और कभी-कभी क्रोध आने पर अपनी सहमी पत्नी और बेटी डोई को पीट भी लिया करता था। आठ वर्ष इसी हाल में अच्छे निकल गए, लेकिन आकाश के महान् देवताओं को भला उसका आराम और शान्ति कहां भाती थी! इसलिए उन्होंने उसकी बेचारी पत्नी को भी उससे छीन लिया और जब वह कुछ दिन बीमार रहकर परलोक सिधार गई तो बूढ़े

ह्रांग को और उसकी बेटी ज़ीई को जो अब जवान हो गई थी कागज के फूल और पंखे बेचने का धंधा करना पड़ा।

और आज आकाश के देवताओं ने उसपर एक और अनर्थ ढाया अर्थात् मुझे उसके बराबर फूल बेचने पर मजबूर करके क्राफोर्ड मार्केट भेज दिया। बूढ़े ह्रांग की आंखों में भय और चालाकी और अन्धी मूर्खता की गहरी घृणा मुझे देखकर चमक उठी और उसने अपनी बेटी से चीनी भाषा में कुछ कहा और उसने भी मेरी ओर घृणा से देखकर मुंह फेर लिया।

हालांकि मैं इस घृणा का पात्र न था। मुझे भी विवश कर दिया गया था। वास्तव में मैं एक महान् कलाकार बनना चाहता था। रंगों से मुझे शुरू ही से बड़ी दिलचस्पी थी और दसवीं श्रेणी तक मुझे जिस क्लास में सबसे अधिक दिलचस्पी थी वह यही आर्ट की क्लास थी। मैं दिन भर चित्र बनाता रहता। तरह-तरह के फूल और नक्शो-निगार बनाता रहता और अन्य विषयों की ओर बहुत कम ध्यान देता। परिणाम-स्वरूप मैं दसवीं श्रेणी में फेल हो गया और मेरे चचा ने जो मेरे मां-बाप के मर जाने के बाद मेरा खर्चा पूरा करते थे मुझे आगे पढ़ाने से इन्कार कर दिया और उसके थोड़े दिनों के बाद जब उनके दफ्तर में छंटनी हुई और वह बाहर निकाल दिए गए तो उन्होंने भी अपने घर में छंटनी की और मुझे बाहर निकाल दिया। अब मुझे वहां सोना पड़ा जहां कुछ एक कमीनों को छोड़कर बम्बई के सारे शरीफ आदमी सोते हैं अर्थात् फुट-पाथ पर। फुट-पाथ पर सोते-सोते पहले दो-चार दिन तो मुझे बड़े विचित्र सपने आए यानी मैंने देखा कि मेरे पास एक पेकार्ड गाड़ी है और मेरे चचा उसके ड्राइवर हैं। मैं विश्व-विद्यालय का वाइस-चांसलर हूं और उन प्रोफेसरों को डांट रहा हूं जिन्होंने मुझे दसवीं में फेल कर दिया था। मैं पैरिस में हूं और संसार के बड़े-बड़े कलाकार मुझे अपने चित्र दिखाते हैं और मैं घृणा से उनकी ओर देखकर कहता हूं, "छिः ! क्या बेहूदी कला है तुम्हारी !" लेकिन

इसके बाद जब मुझे दो-चार फाके लगे और रात को सपनों में भी रोटियां नज़र आने लगीं तो मैंने सोचा कि कुछ न कुछ करना चाहिए। सबसे पहले मैंने क्लर्की की कोशिश की। मालूम हुआ कि क्लर्की के लिए ग्रैजुएट होना, और ग्रैजुएट होकर किसी बड़े आदमी का साला होना, बहुत ज़रूरी है। इसके बाद मैंने एक नाई के यहां नौकरी कर ली। नाई बाल काटता था, मैं सिर पर ब्रश फेरता था। थोड़े दिनों में नाई ने अपनी दुकान बन्द कर दी, क्योंकि उसे शीघ्र ही मालूम हो गया कि बम्बई में फाके, बेकारी, भूख और राशन से लोगों के सिर के बाल उड़ते जा रहे हैं। पहले लोग नाई से बाल कटवाने के लिए आते थे, अब खाली सिर पर ब्रश फिरवाने के लिए आने लगे और नाई ने विवश होकर अपनी दुकान बन्द कर दी। आजकल वह वारसोवा में मछलियां पकड़ता है। इसके बाद मैंने मिल में नौकरी की, फिर स्ट्राइक की, फिर पकड़ा गया। फिर तीन महीने जेल में बन्द रहा। उसके बाद मिल-मालिकों ने सब जगह मेरा हुक्का-पानी बन्द कर दिया यानी जात से बाहर कर दिया। अब मुझे किसी मिल में काम नहीं मिलता था। विवश हो मैंने खोंचे वाले का काम किया, इरानी होटल में नौकरी की। लेकिन कहीं पांव न जमे। आखिर सोच-सोचकर मैंने कागज़ के फूल तैयार करके उन्हें क्राफोर्ड मार्केट के सामने बेचने का काम शुरू किया। एक समय से मैं देख रहा था कि यहां इन फूलों की अच्छी-खासी बिकरी हो जाती है। बहुत से चीनी इस कारोबार में लगे हुए हैं। कुछ-एक देसी लोग भी हैं लेकिन हाथ की सफाई में उनका मुकाबिला नहीं कर सकते। इसलिए दो-चार दिन के बाद ही क्राफोर्ड मार्केट के सामने से कहीं और चले जाते हैं। या शायद कुछ और धन्धा करते होंगे। इसलिए वहां जो चीनी फूल बेचने वाले नज़र आते हैं वह बराबर नज़र आते हैं। लेकिन अपने देसी लोग जो नज़र आते हैं वे कभी नज़र आते हैं और कभी गुम हो जाते हैं। दो-तीन चीनी कालबादेवी रोड को जाने वाली सड़क की ओर खड़े रहते हैं। दो-चार बोरीबन्दर जाने वाली सड़क के सामने,

दो-चार मंगलदास मार्केट के सामने मौजूद होते हैं। हां क्राफोर्ड मार्केट के सामने जहां ट्राम का ज़ंकशन है वहां मैं केवल बूढ़े हांग और उसकी लड़की ज़ीई को देखता था। मैंने सोचा, यहां ज़रा मुकाबिला कम है बिकरी की गुंजाइश अधिक होगी इसलिए मैं भी अपने फूल-पत्तियां लेकर वहीं जम गया। मेरा जमना वहां इतना ही ज़रूरी था जितना बूढ़े हांग और उसकी बेटी ज़ीई का मुझे घृणा की नज़र से देखना।

खैर, बूढ़े हांग की घृणा की तो मुझे इतनी परवाह नहीं थी लेकिन ज़ीई ऐसी जवान और सुन्दर लड़की की घृणा मैं कैसे सहन कर सकता था। और फिर यह बात भी नहीं थी कि मेरे फूल उन से बुरे थे। फूल काटने का सलीका मुझे आ गया था यद्यपि जेब काटने का सलीका अभी तक न आया था। क्रसंथम के गुप्फेदार फूल ऐसे अच्छे बनाए थे मैंने कि रात की पार्टियों में शामिल होने वाले सस्ते किस्म के भावुक लोग उन्हें हाथों-हाथ खरीद कर ले गए। मेरे गमलों में जंगली बेलों के सुर्ख गुलाब देखकर आप बुलबुल का चहकना सुन सकते थे और श्वेत चमेली के फूलों के साथ झालरदार पत्ते इतने अच्छे कतरे थे मैंने कि लोग उन श्वेत फूलों को उन झालरदार पत्तों के साथ नकली सुगंधि लगाकर अपने ड्राइंग-रूम में सजाते हैं और नकली आचार पर अमल करते हुए नकली स्वर्ग को सिधार जाते हैं। अतएव जब संध्या हुई तो मैंने अपने सब फूल बेच दिए। केवल गुलाब की एक डंडी रह गई जिसे मैंने ज़ीई के हवाले कर दिया ताकि वह उसे अपने बालों में टांक ले। लेकिन ज़ीई ने बड़ी सख्ती से उस डंडी को तोड़-मरोड़ कर परे फेंक दिया और बूढ़े हांग ने मुझे क्रोध से घूर कर कहा 'आज तो मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है लेकिन अगर कल को तुम यहां मुझे नज़र आए तो या तो गुंडों से पिटवा दूंगा या पुलिस से कहकर तुम्हें गिरफतार करवा दूंगा।'

मैंने कहा 'पुलिस सबकी है, पुलिस वाला क्या तुम्हारा चचा लगता है?'

हांग ने कहा—'मैं यहां खाली खड़े होने के लिए पुलिस के संतरी को आठ आने देता हूं।'

मैंने अपनी भरी हुई जेब के सिक्के खनखनाए और उससे कहा, 'तुम अठन्नी दोगे तो मैं बारह आने दूंगा और दूसरे दिन जब पुलिस का संतरी आया तो मैंने यही किया। इस पर बेचारा हांग विवश होकर रह गया और अन्त में उसे मुझसे समझौता करना ही पड़ा। समझौते की पहली शर्त यह थी कि मैं उसकी लड़की को भगा कर नहीं ले जाऊंगा। दूसरी शर्त यह थी कि जो फूल वे बेचते हैं वे मैं तैयार नहीं करूंगा। तीसरी शर्त यह थी कि मैं कागज़ के फूलदार पंखे लाकर नहीं बेचूंगा। यह उन्हीं की मनापली रहेगी। अंतिम दो शर्तें मैंने मान लीं लेकिन ज्यूं-ज्यूं दिन गुजरते गए और मुझे जीई अच्छी से और अच्छी लगने लगी, मुझे वह पहली शर्त अखरने लगी। लेकिन जीई मेरी ओर कोई ध्यान न देती थी और यह बड़ी आशावर्धक बात थी क्योंकि मैं अपने छोटे से जीवन के छोटे से तजुर्बे की बिना पर यह अवश्य जानता था कि जो लड़कियां पहली मुलाकात ही में चपड़-चपड़ बातें करने लगती हैं वे बहुत खतरनाक होती हैं और यदि गलती से भी आपका हाथ उनके कंधे से छू जाए तो तुरन्त पुलिस तक मामला ले जाती हैं— लेकिन जीई ऐसी न थी, वह मुझसे बहुत कम बात करती थी और अक्सर अपने गिलाफी पपोटों के भीतर से मुझे यूं देखती थी कि मैं सोचता था शायद इन गिलाफी पपोटों के भीतर की आंखों के भीतर और भी कई आंखें बन्द हैं जो मुझ को नज़र नहीं आती हैं। और मेरा दिल उसकी नज़र के सामने यूं कांपने लगता था जैसे स्कूल का बच्चा हैडमास्टर के बैंत के सामने।

बूढ़े हांग ने मेरे दिल की हालत का अंदाज़ा करके एक दिन जब जीई उसके साथ नहीं आई थी, मुझ से पूछा 'तुम जीई से शादी करोगे?'

'शादी?' मैंने चौंककर कुछ उससे, कुछ अपने आप से पूछा।

दो-चार मंगलदास मार्केट के सामने मौजूद होते हैं। हां क्राफोर्ड मार्केट के सामने जहां ट्राम का ज़ंकशन है वहां मैं केवल बूढ़े हांग और उसकी लड़की ज़ीई को देखता था। मैंने सोचा, यहां ज़रा मुकाविला कम है विकरी की गुंजाइश अधिक होगी इसलिए मैं भी अपने फूल-पत्तियां लेकर वहीं जम गया। मेरा जमना वहां इतना ही जरूरी था जितना बूढ़े हांग और उसकी वेटी ज़ीई का मुझे घृणा की नज़र से देखना।

खैर, बूढ़े हांग की घृणा की तो मुझे इतनी परवाह नहीं थी लेकिन ज़ीई ऐसी जवान और सुन्दर लड़की की घृणा मैं कैसे सहन कर सकता था। और फिर यह वात भी नहीं थी कि मेरे फूल उन से बुरे थे। फूल काटने का सलीका मुझे आ गया था यद्यपि जेव काटने का सलीका अभी तक न आया था। क्रसंथम के गुप्फेदार फूल ऐसे अच्छे वनाए थे मैंने कि रात की पार्टियों में शामिल होने वाले सस्ते किस्म के भावुक लोग उन्हें हाथों-हाथ खरीद कर ले गए। मेरे गमलों में जंगली वेलों के सुर्ख गुलाव देखकर आप वुलवुल का चहकना सुन सकते थे और श्वेत चमेली के फूलों के साथ झालरदार पत्ते इतने अच्छे कतरे थे मैंने कि लोग उन श्वेत फूलों को उन झालरदार पत्तों के साथ नकली सुगंधि लगाकर अपने ड्राइंग-रूम में सजाते हैं और नकली आचार पर अमल करते हुए नकली स्वर्ग को सिधार जाते हैं। अतएव जव संध्या हुई तो मैंने अपने सव फूल बेच दिए। केवल गुलाव की एक डंडी रह गई जिसे मैंने ज़ीई के हवाले कर दिया ताकि वह उसे अपने वालों में टांक ले। लेकिन ज़ीई ने वड़ी सख्ती से उस डंडी को तोड़-मरोड़ कर परे फेंक दिया और बूढ़े हांग ने मुझे क्रोध से घूर कर कहा 'आज तो मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है लेकिन अगर कल को तुम यहां मुझे नज़र आए तो या तो गंडों से पिटवा दूंगा या पुलिस से कहकर तुम्हें गिरफतार करवा दूंगा।'

मैंने कहा 'पुलिस सवकी है, पुलिस वाला क्या तुम्हारा चचा लगता है?'

हांग ने कहा—'मैं यहां खाली खड़े होने के लिए पुलिस के संतरी को आठ आने देता हूं।'

मैंने अपनी भरी हुई जेब के सिक्के खनखनाए और उससे कहा, 'तुम अठन्नी दोगे तो मैं बारह आने दूंगा और दूसरे दिन जब पुलिस का संतरी आया तो मैंने यही किया। इस पर बेचारा हांग विवश होकर रह गया और अन्त में उसे मुझसे समझौता करना ही पड़ा। समझौते की पहली शर्त यह थी कि मैं उसकी लड़की को भगा कर नहीं ले जाऊंगा। दूसरी शर्त यह थी कि जो फूल वे बेचते हैं वे मैं तैयार नहीं करूंगा। तीसरी शर्त यह थी कि मैं कागज के फूलदार पंखे लाकर नहीं बेचूंगा। यह उन्हीं की मनापली रहेगी। अंतिम दो शर्तें मैंने मान लीं लेकिन जूं-जूं दिन गुज़रते गए और मुझे जीई अच्छी से और अच्छी लगने लगी, मुझे वह पहली शर्त अखरने लगी। लेकिन जीई मेरी ओर कोई ध्यान न देती थी और यह बड़ी आशावर्धक बात थी क्योंकि मैं अपने छोटे से जीवन के छोटे से तजुर्बे की बिना पर यह अवश्य जानता था कि जो लड़कियां पहली मुलाकात ही मे चपड़-चपड़ बातें करने लगती हैं वे बहुत खतरनाक होती हैं और यदि गलती से भी आपका हाथ उनके कंधे से छू जाए तो तुरन्त पुलिस तक मामला ले जाती है—लेकिन जीई ऐसी न थी, वह मुझसे बहुत कम बात करती थी और अक्सर अपने गिलाफी पपोटों के भीतर से मुझे यूं देखती थी कि मैं सोचता था शायद इन गिलाफी पपोटों के भीतर की आंखों के भीतर और भी कई आंखें बन्द हैं जो मुझ को नजर नहीं आती हैं। और मेरा दिल उसकी नजर के सामने यूं कांपने लगता था जैसे स्कूल का बच्चा हैडमास्टर के बैंत के सामने।

बूढ़े हांग ने मेरे दिल की हालत का अन्दाजा करके [illegible] दिन जब जीई उसके साथ नहीं आई थी, मुझ से पूछा 'तुम जीई से शादी करोगे ?'

'शादी ?' मैंने चौंककर पूछा उससे, कुछ [illegible]

'हां, हां !' बूढ़े हांग ने एक बड़ी ही चालाक मुस्कराहट के साथ अपने टूटे हुए दांतों वाला मुंह खोलते हुए कहा 'ज़ीई से शादी करोगे ? और अब तुम कर भी सकते हो। कमाते हो, सूरत-शकल भी अच्छी है, पढ़े-लिखे भी हो और मेरी ज़ीई भी कुछ ऐसी-वैसी नहीं है। वह अंग्रेज़ी भी पढ़ सकती है और चीनी भी। सारे कमारी पुरा में उस जैसे फूल और कोई नहीं तैयार कर सकता। न अंग्रेज़ी टोपियां, न पंखे ! वह कोई उज्जड़ गंवार नहीं है।'

मैंने कहा 'अच्छा मैं ज़ीई से शादी कर लूंगा हालांकि मेरा इरादा उसे भगाकर ले जाने का था।'

हांग बोला 'वह मैं जानता हूं। ऐसा बुद्धू नहीं हूं। आदमी की नज़र पहचानता हूं, लेकिन तुम मेरे जीते जी इसमें कभी सफल नहीं हो सकते।'

मैंने कहा 'कोशिश तो की जा सकती है। सफलता चाहे न हो। यह बात आकाश के देवताओं पर छोड़ देनी चाहिए।'

हांग बोला 'यह बात तो मैं पुलिस वालों के सुपुर्द करूंगा। इस मामले में आकाश के देवताओं पर कम भरोसा करता हूं।'

मैंने कहा 'अच्छी बात है, तो मैं भगाने का विचार छोड़ देता हूं। शादी के लिए मान जाता हूं। कितने रुपये लोगे ?'

हांग ने इधर-उधर देखकर कहा 'एक बूढ़ा मालदार चीनी जिसका फ़ोर्ट में रेस्टोरां भी है, ज़ीई के एक हज़ार देता है। मैंने बूढ़ा समझकर हां नहीं की। तुम्हें छः सौ में दे दूंगा।'

'छः सौ मैं कहां से लाऊंगा ?'

हांग ने कहा 'किस्तों में दे देना।'

मैं चुप होकर कुछ सोचने लगा।

हांग ने कहा 'क़िस्तों में कोई हर्ज नहीं है। आजकल तो रेडियो, गाड़ी, फ़र्निचर हर चीज़ क़िस्तों पर मिल जाती है। तुम चालीस-पचास रुपये महीना भी दोगे तो साल भर में अदा हो जाएंगे। अगले साल तुम

शादी कर लेना।'

मैंने कहा 'मुझे मंजूर है, लाओ हाथ।'

बूढ़े ने हाथ मिलाते हुए और मुस्कराते हुए मुझसे कहा 'आज से समझो कि तुम मेरे बेटे हो गये। इसलिए एक अक्ल की बात कहता हूं। हर रोज अपनी कमाई में से कुछ निकाल कर मुझे देता जा। हर महीने हिसाब करना भी मुश्किल हो जाएगा। रोज का रोज बचालो तो बच जाता है। महीने के बाद बचाना बहुत मुश्किल हो जाता है। मुझे इस चीज का तजुर्बा है।'

मैंने कहा 'बहुत अच्छा। रोज का रुपया सवा रुपया मुझसे ले लेना। बाकी महीने के आखिर में।'

'शाबाश' कहकर बूढ़े हांग ने फिर मुझ से जोर से हाथ मिलाया और कहने लगा 'मगर जीई के कान में इसकी भनक न पड़ने पाए। न तुम्हारे सलूक से और न तुम्हारी किसी बात से उसे यह पता चले कि हम लोग क्या करने वाले हैं। और हां शादी से पहले मैं उसे तुम से अधिक बात-चीत का मौका भी नहीं दूंगा। हमारे हां यह रिवाज नहीं है।'

मैंने कहा 'हमारे हां भी यह रिवाज नहीं है।'

बूढ़े हांग ने कुछ खांसने, कुछ हंसने के बीच में कहा 'और यह बहुत अच्छा रिवाज है। जब तक स्त्री-पुरुष एक दूसरे से बात न करें, भ्रम बना रहता है। मुझी को लो, जब मैंने जीई की मां से शादी की, मुझे पता न था कि उसकी जबान कितनी तेज चलती है और उसे भी यह पता न था कि मेरे मुंह से कितनी बू आती है। शादी के बाद दोनों का भ्रम खुल गया। हा, हा, हा!'

'हा हा हा' मैं भी खूब हंसा। फिर एक दम गंभीर होकर मैंने उस से पूछा 'जीई की जबान कैसे चलती है?'

वह बोला, 'चिन्ता न करो। चांदी की घंटी है, चांदी की घंटी।'

इस बात को छः महीने गुज़र गए थे। मैं अभी तक हांग को डेढ़ सौ रुपए ही दे सका था क्योंकि रोजगार कई बार मंदा भी पड़ जाता था। लेकिन हांग बेचारा मेरी मजबूरी समझता था। इसलिए चुपके से मैं जो रकम भी देता था कबूल कर लेता था। मेरा सलूक ज़ीई से और ज़ीई का सलूक मुझ से उसी तरह था। यानी वही कम बातचीत और कम ही एक दूसरे की ओर देखना। बल्कि अक्सर तो उसकी ओर से विचित्र प्रकार की विमुखता का अनुभव होता जिससे मैं परेशान हो उठता और मैं अपने दिल की बात प्रकट करने के लिए बेचैन हो जाता।

आखिर एक दिन मुझे इसका अवसर मिल ही गया। मौनसून के दिन थे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। मैं अपने कागज़ के फूलों को लिए ट्राम स्टेंड के भीतर दुबका खड़ा था। मेरे निकट ही एक बूढ़ा मूंगफली पर कोयलों की छोटी-सी हंडिया रखे बैठा था। एक भिखमंगा लड़का अपने चीथड़ों से बदन ढांपने की असफल चेष्टा कर रहा था और दांत बजा रहा था, उसकी पतली-पतली बांहों पर और टांगों पर खाल मढ़ी नज़र आती थी और उसका पेट आगे को बढ़ा हुआ था। चारों ओर ज़ोर की वर्षा हो रही थी। लोग दुकानों में दुबके खड़े थे। सड़कों पर कहीं-कहीं बन्द विक्टोरिया नज़र आ जातीं या फिर बन्द मोटरें शीशे चढ़ाए हार्न बजाती हुई इधर से उधर गुज़र जातीं। खड़े-खड़े दिन ढल गया। संध्या हो गई। बत्तियां जल उठीं लेकिन वर्षा बन्द नहीं हुई। ट्राम और बस का चलना भी बन्द हो गया लेकिन वर्षा बन्द नहीं हुई। मैं चुपचाप छते हुए ट्राम स्टेण्ड के एक कोने में अपने कागज़ी फूल लिए ज़ीई और बूढ़े हांग के इन्तज़ार में खड़ा रहा। आज दिन भर से ज़ीई को न देखा था। रोज़ देखता था इसलिए न देखने की पीड़ा से परिचित था। आज मालूम हुआ कि जिसे रोज़-रोज़ जी-जान से देखा जाए उसे एक दिन का न देखना कितना खल जाता है, कितना बुरा मालूम होता है। आज वर्षा कितनी उदास है। मार्केट के सामने के खम्बे कितने अकेले हैं। सड़क कितनी सुनसान है। ट्राम की लाइन कितनी दूर तक चुपचाप

अपनी छाती में किसी अनजाने दुःख को छुपाए चली गई है। जीवन जो कल तक कागज़ के फूलों की तरह खिल उठा था आज किस प्रकार एक कली की तरह बन्द हो गया है। जैसे उसने प्रेम के सारे दरवाज़े मुझपर बन्द कर दिए हों और मुझे बाहर सड़क पर ट्राम-स्टेण्ड पर खड़ा करके स्वयं कहीं चली गई हो...

एकाएक किसी ने मेरे निकट आकर मुझसे पूछा, 'आज कितने के फूल बिके ?'

पूछने वाले ने प्रश्न इतने निकट आकर किया कि उसके श्वास की गरमी मेरे गालों को छू गई और जब मैंने उसे देखने के लिए सिर उठाया तो उसने जल्दी से अपना चेहरा परे हटा लिया और मेरी आंखों में ज़ोई की गिलाफी आंखों की चमक कौंद गई। हां यह ज़ोई ही थी। अकेली ! वर्षा में भीगी हुई। सुगन्धि की तरह उड़ती हुई। भीगे बालों में भीगी महक लिये। उसके भीगे-भीगे ओंठों पर एक विचित्र सी चमक थी।

मैंने कहा, 'इस वर्षा में तुम अकेली कैसे आ गईं ? हांग कहां है ?'

उसने कहा, 'उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। सवा रुपया लाने के लिए। उनकी तबीयत ठीक नहीं है। डाक्टर से दवा लानी है।'

मैंने चुपके से सवा रुपया दे दिया।

वह बोली, 'यह सवा रुपया कहां से आया ? आज तो फूल बिके नहीं होंगे ?'

मैंने कहा, 'कल के बचे थे।'

वह बोली, 'कल भी तो सवा रुपया दिया था।'

मैंने कहा, 'तुम्हें कैसे मालूम है ?'

वह बोली, 'मैं सब जानती हूं।'

मैं चुप रहा।

वह बोली, 'कब तक यह सवा रुपया देते रहेंगे ?'

मैंने कहा, 'जब तक छः सौ पूरे नहीं हो जाते।'

ज़ीई ने एक आह भरी, बोली, 'वह आप से छः-सौ ले रहे हैं। एक और से आठ सौ पर मामला कर रखा है। तीसरे से बारह सौ पर सौदा हुआ है। ज़ीई तो एक है शादी तीन जगह कैसे होगी ?'

मैं हक्का-बक्का होकर उसके मुंह की ओर देखने लगा।

मेरा आश्चर्य देखकर वह बोली, 'ठीक कह रही हूं।'

मैंने क्रोध में आकर कहा, 'यह बहुत बुरी बात है।'

ज़ीई ने एक आह भरी, बोली, 'इससे भी बुरी-बुरी बातें हमने देखी हैं।'

'लेकिन मैंने तो तुम्हारे साथ कोई बुरा सलूक नहीं किया है।' मैंने और भी क्रोधित होकर कहा।

ज़ीई ने एक बड़े उदास और फीके स्वर में, जिसमें अत्यन्त थकन मौजूद थी, मेरी ओर मुड़कर कहा, 'क्या यह सौदा करने से पहले आपने मुझसे पूछ लिया था ? क्या आपको मालूम नहीं था कि चीनी औरत के पांव अब बंधे हुए नहीं हैं ? अब वह अपने पांव से चलकर कहीं भी जा सकती है।' जिस ढंग से उसने 'कहीं' कहा, मुझे ऐसा लगा जैसे वह मेरे निकट से उठकर कहीं दूर चली गई है और शायद वह कहीं बहुत दूर चली गई थी। भारत से आगे, बर्मा से, स्याम से, हिन्दचीनी से आगे चीन के खेतों पर उसकी नज़र पड़ रही थी।

वह बोली, बहुत धीरे-धीरे, 'आज मुझे अपना देश याद आ रहा है जहां लोग नये जीवन के लिए लड़ रहे हैं। जहां मेरे जैसी लड़कियां भी पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाए लड़ रही हैं। एक मैं ही यहां पड़ी सड़ रही हूं! काश ! कोई मुझे कहीं से पर देदे। मैं आज ही इसी समय उड़कर वहां पहुंच जाऊं जहां यह लड़ाई हो रही है।'

'यह कैसी लड़ाई है ?' मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए कहा। ज़ीई आज बोल रही थी।

उसने उत्तर नहीं दिया। फिर कुछ देर बाद बोली, 'तुम जानते हो मेरा असली नाम ज़ीई नहीं है।'

'नहीं ?'

'मेरा असली नाम कुछ और था। यह नाम मैंने स्वयं रखा है। जीई एक बहादुर चीनी लड़की थी जो च्यांगकाई शेक के अत्याचार के विरुद्ध वीरता से लड़ती हुई अमर हो गई। मैं भी जीई की तरह लड़ना चाहती हूं।'

'किस लिए ?'

वह बोली, 'तुम्हें कैसे समझाऊं—अच्छा कोशिश करती हूं…… सुनो……जहां हमारा गांव है वहां हान नदी बहती है। हमारे गांव का नाम क्वांगशा है। वहां पर नाशपातियों के झुंड हैं और आड़ू के पेड़ हैं और नदी के किनारे-किनारे विल्लो के वृक्ष अपनी टहनियां नदी पर झुकाए दूर तक चले गए हैं। घाटी के ऊपर, सारे गांव के ऊपर नजर रखता हुआ बूढ़े सरदार वू का घर है जिसने मेरे बाप की जमीन छीनकर उसे गांव से बाहर निकाल दिया था। उस समय मैं केवल चार वर्ष की थी।'

'गांव से क्यों निकाला ?'

'इसलिए कि कर्जा न दिया जा सका—जो बूढ़े सरदार ने मेरे बाप को मेरे जन्म के अवसर पर दिया था।'

एकाएक मुझे अपने चचा के घर से निकलना याद आ गया। मैंने कहा, 'अरे अब मैं समझ गया।'

'कैसे ?' वह बोली।

'बस अपने तजुर्बे से।'

'अपना तजुर्बा बहुत जरूरी है।'

'अच्छा आगे बताओ।'

वह बोली 'फिर हम अपने गांव से दूसरे गांव में आ गए। वहां हम दूसरे लोगों के खेतों में मजदूरी करते रहे। मेरी मां बहुत सुन्दर थी।'

मैंने कहा 'इसका मुझे कुछ-कुछ अंदाजा होता है।'

ज़ीई शरमाई, कुछ प्रसन्न हुई, बोली 'तुम प्रशंसा कर चुको तो आगे चलूं।'

'अच्छा आगे चलो।'

'चूंकि मेरी मां बहुत सुन्दर थी और हम लोग बहुत निर्धन थे इसलिए वे दूसरे लोग जिनके खेतों में हम काम करते थे हम से काम कराने के बाद ऐश भी चाहते थे। मेरे बाप को यह मंजूर न हुआ। इसलिए हम उस गांव से भी निकल आए।'

'फिर ?'

'फिर बहुत सख्त अकाल पड़ा। लोग भूख से मरने लगे। मेरे बाप ने तंग आकर अपनी पत्नी को एक अमीर बूढ़े के हाथ दो हज़ार में बेच दिया।'

'तुम्हारी मां को ?'

'हां, उसी को।'

उन दो हज़ार डालरों से हम लोग हांगकांग आए। सुना था वहां रिक्शा चलाने का अच्छा धंधा है। मेरे बाप ने एक रिक्शा ख़रीद ली और रिक्शा चलाने लगा। गोरे लोग शराब पीकर अक्सर दंगा तो करते ही हैं लेकिन एक दिन एक गोरे ने मेरे बाप को इतने चाबुक मारे कि वह बेहोश हो गया। फिर गोरे ने उसकी रिक्शा को आग लगा दी।'

'दो हज़ार डालर जल गए। फिर ?' मैंने पूछा।

'फिर मेरे बाप ने मुझे बेचना चाहा लेकिन मैं बहुत छोटी थी। बहुत निर्बल थी, बहुत दुबली-पतली थी, कोई मुझे ख़रीदने पर तैयार न हुआ। आखिर एक पादरी ने मुझे अपने घर में रख लिया, नौकरानी। पादरी की बीवी मुझे अंग्रेज़ी पढ़ाने लगी। वह बड़े अच्छे दिन थे। मैं अच्छी ख़ासी मोटी-ताज़ी हो गई। लेकिन मेरे बाप को कोई नौकरी न मिली। इसलिए उसने एक अंग्रेज़ कम्पनी के गोदाम में चोरी की और पकड़ा गया और उसे दो वर्ष की जेल हो गई।'

मैं चुपचाप सुन रहा था।

वह फिर बोली 'उसने चावल चुराए थे गोदाम से। क्योंकि वह भूखा था और वह इसलिए भूखा था कि उसके चावल उसके खेत से चुराकर च्यांगकाई शेक की सरकार ने अंग्रेज़ों के गोदामों में भर दिए थे और अमरीकनों के गोदामों में। उन लोगों ने केवल उसके चावल ही नहीं चुराए थे बल्कि उसके खेत भी हथिया लिए थे और सरदार वू को दे दिए थे।'

वह देर तक चुप रही।

मैंने कहा 'फिर ?'

वह बड़ी बेदिली से बोली 'फिर हम सिंगापुर आ गए। सिंगापुर से मलाया गए। वहां रबड़ के बागों में काम करते रहे। वहां से बर्मा गए और फ़िर बम्बई आ गए। आगे तुम जानते हो।'

'और अब ?' मैंने पूछा।

'और अब मैं तुमसे यह कहती हूं कि तुम मेरे बाप को सवा रुपया देना बन्द कर दो। मैं तुम से क्या, किसी से भी शादी नहीं करूंगी।'

'क्यों ?'

'मैं वापस चीन चली जाऊंगी। जिस दिन मेरे पास रुपया हुआ, मैं चीन चली जाऊंगी।'

'तो फिर तो मुझे हर रोज़ डेढ़ रुपया देना चाहिए।'

वह मेरी ओर आश्चर्य से देखने लगी—बोली :—

'मैं यह रुपया लेकर चीन चली जाऊंगी तो तुम्हें क्या मिलेगा ?'

मैंने कहा 'मैं इन्तज़ार करूंगा।'

वह मेरी ओर देखकर मुस्कराई, बोली 'मैं तो इतनी अच्छी नहीं हूं। नाक भी अच्छी नहीं हूं। तुम मेरा ख्याल न करो। देखो तुम्हारे भारत में कितनी अच्छी लड़कियां हैं। इनकी नाक कितनी अच्छी होती हैं। आंखें कितनी बड़ी-बड़ी, नुकीली, जैसे अभी चेहरे से बाहर निकल पड़ेंगी। हाय ! ऐसी अच्छी आंखें तो मैंने कहीं नही देखीं। यह तुम को क्या हुआ है ?'

मैंने कहा 'तुम जाओ, मैं इन्तज़ार करूंगा।'

वह मेरे निकट आकर बोली 'मुझे भूख लगी है।'

मैंने कहा 'अब मेरे पास केवल मूंगफली के पैसे रह गए हैं' मैंने मूंगफली वाले से कहा 'दो आने की मींगा दो।'

वह बोली 'मींगा मूंगफली को कहते हैं? बिलकुल चीनी नाम मालूम होता है, मींगा।'

मूंगफली खाते-खाते कई बार हाथों में हाथ उलझ गए लेकिन उलझ-उलझ कर फिर सुलझ गए। उसकी आंखें और गहरी हो चली थीं। वह कांप रही थी। मैं भी कांप रहा था और चारों ओर वर्षा हो रही थी। फिर थोड़े समय के बाद उसने कहा 'चारों ओर लोग हैं फिर भी कैसा एकांत है।'

मैंने कहा 'और कितना अच्छा एकांत है।'

वह हंसी, बोली 'अब मैं जाती हूं।'

मैंने उससे तो कुछ नहीं कहा। अपने मन से केवल इतना कहा—अब यह कहीं भी चली जाए इससे कुछ न होगा। मैं इसका इन्तज़ार करूंगा।

और बहुत-सा समय गुज़र गया। समय गुज़रने का पता केवल शाम के समाचार-पत्र से मालूम होता था। जब यह पता चलता था कि पीपिंग समाप्त हो गया। पीकिंग विजय कर लिया गया। शंघाई समाप्त हो गया। माओ की सेनाएं चीन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुंच गईं और हांग-कांग के तट से टकराने लगीं। जिस दिन यह हुआ यानी चीन की सेनाएं हांग-कांग की सीमा पर पहुंच गईं उसी दिन हमारे प्रेम की सीमा भी आ पहुंची।

वह बोली 'बस अब किराया हो गया है।'

मैंने कहा 'वह लड़ाई तो यहां भी लड़ी जा सकती है।'

उसने कहा 'यह तुम्हारा काम है। मैं वहां जाऊंगी।'

मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा 'ज़ोई, संसार तो जगह-जगह से टूटा

पड़ा है। इस काम को तो यहां से भी शुरू किया जा सकता है। आओ हाथ में हाथ दो।'

वह हिचकिचाई, कुछ सोचने लगी। थोड़ी देर तक उसका हाथ मेरे हाथ में रहा, फिर बड़ी नरमी से उसने अपना हाथ मेरे हाथ से मुक्त कर लिया और मेरा हाथ अकेला रह गया।

उसने कहा : 'मुझे जाने दो। मुझे अपने देश जाने दो। मैं यहां रही तो कभी प्रसन्न न रहूंगी। हां वहां जाकर सोचूंगी !'

मैंने कहा : 'मैं इन्तज़ार करूंगा।'

जाने से पूर्व बूढ़े हांग और जीई में बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। बूढ़ा हांग वापस न जाना चाहता था और यह भी नहीं चाहता था कि उसकी बेटी वापस चीन चली जाए। इसलिए वह रोया-धोया। उसने जीई को धमकाया, मारा-पीटा। मामला पहले पुलिस में और बाद में अदालत तक ले गया लेकिन जीई अब बालिका न थी और अब वह अपने देश जा सकती थी और संसार की कोई शक्ति उसे रोक न सकती थी। प्रेम के मज़बूत हाथ भी उसे रोक न सके और वह बम्बई से कलकत्ते और कलकत्ते से हांगकांग चली गई। जाने से पूर्व कोई अधिक बात-चीत मुझ से नहीं हुई। अन्तिम नमस्कार के समय भी उसकी आंखों में आंसू नहीं थे। प्रसन्नता की चमक थी और एक विचित्र प्रकार की बेकरारी और बेताबी। हां, बिल्कुल अन्तिम समय उसने एक बार दृढ़ता से मेरा हाथ पकड़ा और मेरे कान में कहा 'मैं अवश्य आऊंगी, मेरा इन्तज़ार करना।'

और उसके जाने के बाद मुझे ऐसा लगा जैसे सारे संसार की सुगंधियां पंख लगाकर उसके साथ उड़ गई हैं और मेरे हाथ में केवल कागज के फूल रह गए हैं।

बूढ़ा हांग उसे विदा करने भी नहीं आया। उसके बाद मुझे भी नहीं मिला। शायद उसने फूल बेचने का धन्धा ही बन्द कर दिया था।

बाद में मुझे एक चीनी फूल बेचने वाले से पता चला कि उसने एक दूसरी चीनी वेश्या से शादी कर ली है और हर समय अफीम की पीनक में मस्त रहता है। बहुत समय के बाद मुझे ज़ीई का पत्र मिला।

प्यारे,

यह पत्र मैं तुम्हें अपने गांव से लिख रही हूं जो हान नदी के किनारे पर है, जहां नाशपातियों के झुण्ड हैं और उनपर फ़ीरोज़े और पुखराज की-सी सुन्दर पत्तियां निखर रही हैं। आड़ू के वृक्षों पर श्वेत-श्वेत फूल खिले हैं और वहां जहां सरदार वू का घर था वहां अब हमारे गांव का स्कूल है। ज़मीन हम सब किसानों को फिर से मिल गई है। अपनी मां का पता भी मैंने चला लिया है और उसे अपने साथ ले आई हूं। जिस ज़मींदार ने उसे अकाल के दिनों में मेरे बाप से खरीदा था वह आजकल देश से विश्वासघात करने के अपराध में और ब्लैक मार्केट करने के अपराध में जेल में बन्द है। यहां मुझे स्कूल में उस्तानी का कार्य सौंपा गया है। जानते हो अब मैं बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाती हूं। क्या तुम सोच सकते हो कि तुम्हारी ज़ीई कभी बच्चों को स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ाएगी? कभी-कभी मैं स्वयं ऐसा सोचती हूं तो प्रसन्नतावश उछल पड़ती हूं। ऐसी प्रसन्नता क्या कभी संभव थी? किन मुसीबतों से हमने आज़ादी प्राप्त की है, सोचती हूं तो ख्याल आता है, मैंने इस आजादी के लिए कुछ भी नहीं किया। अब सारा जीवन भी इस कार्य में लगा दूं तो कम है।

तुम अभी यहां आ जाओ तो कैसा रहे। हैरान रह जाओगे यह देखकर कि क्या यह वही चीन है? यह वही गांव है? सारी धरती बदल गई है। मैं समझती हूं हमारे गांव की चिड़ियों तक को इस बात का अनुभव है कि हम लोग स्वतन्त्र हो चुके हैं, अपनी आत्मा के स्वयं मालिक हैं।

जब तुम याद आते हो तो तुम्हें यहां देखने की इच्छा होती है।

यहां पर एक लड़का है जो अक्सर तुम्हें भुला देने की कोशिश किया करता है।

तुम्हारी
जीई

मैंने जीई के इस पत्र का कोई उत्तर न दिया, कई बार पत्र लिख कर फाड़ दिया। इधर कुछ और परेशानियां भी बढ़ गई थीं। रंगीन कागज़ के दाम बढ़ गए थे। बेलों और टहनियों में जो तार खर्च होता था उसके दाम व्यापारियों ने बढ़ा दिए थे। महंगाई होने से लोग कागज़ के फूल कम खरीदने लगे। लोगों के पास अपने कपड़ों के लिए पैसे न रहे तो वे कागज़ के फूल खरीदकर क्या करते। मैं अक्सर भूखा और बेकार रहने लगा। चिड़चिड़ा और परेशान। दो-तीन बार पुलिस वालों से तू-तू मैं-मैं हुई। मुझे स्वयं आमदनी की कोई सूरत नज़र न आती थी, भला उस सन्तरी को बारह आने रोज़ कहां से देता? सन्तरी ने मुझे दो-तीन बार बड़े प्रेमपूर्वक समझाया। बताया कि वह रिश्वतखोर नहीं है। रिश्वत से उसे सख्त घृणा है लेकिन उसके घर में बीवी बीमार है। दवा के लिए वेतन में से पैसे नहीं बचते। महंगाई इतनी बढ़ गई है कि खाली-खूली ईमानदारी से पेट नहीं भरता। और पेट बुरी बला है। लेकिन मेरे पास पैसे कहां से आते जो मैं उसे देता? आखिर क्रोध में आ उसने मुझे हवालात में बन्द कर दिया। आवारागर्दी के दोष में मुझे पन्द्रह दिन की कैद हो गई।

जब मैं कैद से छूटकर आया तो मुझे जीई का एक और पत्र मिला।

प्यारे,

तुमने मेरे पहले पत्र का उत्तर नहीं दिया है। शीघ्र लिखो क्या बात है। यहां पर अबके हमारे गांव में फसल पहले से ड्योढ़ी है और किसी ज़मींदार को भी फसल का भाग नहीं देना पड़ा। सारी की सारी फसल अपनी है। चीज़ों की कीमतें घट गई है, घटती जा रही है और आर्थिक हालात जो बिगड़ चुके थे अपने-आप ठिकाने पर आ रहे हैं।

कल हमारा राष्ट्रीय त्यौहार था। सारे गांव में हिंडोले लगाए गए। दीप जले। नृत्य और संगीत। स्कूल के वाहर गांव वालों ने मिलकर एक वहुत वड़ा जलसा दिया। उस अवसर पर मैंने एक वड़ा हिंडोला तैयार किया जो चक्कर खाकर घूमता था। जैसे सरकस या नुमायश के हिंडोले घूमते हैं। गांव वाले मेरी कारीगरी देखकर वहुत प्रसन्न हुए और मुझे चांदी का एक तमगा इनाम में दिया। स्कूल में भी मेरे काम को वहुत पसन्द किया जा रहा है।

क्या तुम मेरी किसी वात से रुष्ट हो ?

तुम्हारी
ज़ोई

उस पत्र का मैंने यह उत्तर दिया—

प्यारी ज़ोई,

प्रसन्न रहो। मैं अभी-अभी पन्द्रह दिन की जेल काटकर आया हूँ और तुम्हें पत्र लिख रहा हूं। मेरा दोष यह था कि मैं वेकार था। मुझे मेरी वेकारी की सज़ा मिली हालांकि सज़ा उस मंत्री को मिलनी चाहिए थी जिसके राज्य में मैं वेकार हुआ। यहां काम का वहुत मन्दा है आजकल। फूल नहीं विकते। अनाज महंगा हो गया है। कपड़ा भी महंगा हो गया है। हर चीज़ के दाम बढ़ते जा रहे हैं। सोचता हूं कि ऐसा क्यों हो रहा है कि यहां कीमतें बढ़ रही हैं और तुम्हारे यहां घट रही हैं। ऐसा मैं तुम्हारे प्रेम के कारण नहीं सोचता वल्कि आस-पास के हालात के कारण सोचता हूं। और न भी सोचूं तो क्या करूं ?

यह जानकर वहुत प्रसन्न हूं कि तुम प्रसन्न हो। मेरी प्रसन्नता की कोई सूरत नजर नहीं आती। वाकी रहा उस लड़के का मामला जो मुझे तुम्हारे दिल से भुला देने की चिन्ता में है, उसकी मुझे अधिक चिंता नहीं है। मैं तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा हूं। तुम क्या करती हो, इसकी मुझे चिन्ता क्यों ?

तुम्हारा अपना

◇ ◇ ◇

उसके बाद जब कोरिया का युद्ध आरम्भ हुआ तो उसका पत्र आया जिसमें उसने लिखा था : 'इस युद्ध ने मेरे जीवन के सारे इरादे बदल दिए हैं। अब मैं वह कभी नहीं हो सकती जो मैं पहले सोचती थी। अब मैं कोरिया के युद्ध में चीनी वालंटियर बनकर जा रही हूं। वहां नर्स का काम करूंगी और यदि जीवित रही तो शायद तुमसे मिलने की कोई शकल निकल सके। नहीं तो यही अंतिम नमस्कार समझो।' अंतिम वाक्य था, 'अच्छा तो यही है कि मुझे दिल से भुला दो। हम वहां मिले जहां हालात एक दूसरे से टकरा रहे थे। एक बहाव पर नहीं मिले। उल्टे बहाव पर मिले। इसलिए एक क्षण के लिए रुककर एक दूसरे से बिछुड़ गए। अब मैं तो 'खंदकों, गोलियों और लोहे की बाड़ों के रास्ते पर जा रही हूं। अपने कागज़ी फूलों को मेरे रास्ते से हटा दो प्यारे! मेरे देश का जीवन, सारे एशिया का जीवन खतरे में है।'

इसके बाद मुझे उसका कोई पत्र नहीं मिला। मैं उसके बाप से मिलने गया लेकिन वह तो सदैव के लिए अपनी बेटी को दिल से भूल चुका था और ज़ीई भी उससे नाता तोड़ चुकी थी। किसी एक पत्र में भी उसने मुझसे कभी अपने बाप के सम्बन्ध में नहीं पूछा। एक अंतिम मजबूरी थी, वह भी सदैव के लिए समाप्त हो गई। अब ज़ीई स्वतन्त्र थी और कोरिया चली गई थी।

कोरिया के युद्ध ने कई पासे बदले। कई रुख पलटे लेकिन ज़ीई की कोई सूचना न मिली। स्वतन्त्र चीन की पहली वर्षगांठ आई और चली गई। मैंने उसके गांव के स्कूल में कई पत्र डाले लेकिन कुछ पता न चला। प्रतिदिन समाचार-पत्र देखता था क्योंकि कोरिया का युद्ध अब ज़ीई का ही युद्ध न था। अब वह मेरा भी युद्ध था।

कल 'ब्लिट्ज़' अखबार देखने से ज़ीई का पता चल गया। कोरिया के युद्ध के सम्बन्ध में उसमें एक फोटो छपा था, जिसमें कुछ अमरीकी

वहादुर सिपाही पीछे खड़े थे और अपने सामने उन्होंने कोरियाई और चीनी सैनिकों के वारह सिर काटकर ईंटों पर रख दिये थे। उन वारह सिरों में एक सिर ज़ीई का भी था। वारह क्या यदि एक लाख सिर भी होते तो मैं अपनी ज़ीई का सिर पहचान लेता। उसके होंट वन्द थे। उसकी आंखें खुली थीं। उसके वाल खुले हुए थे। ज़ीई जो ज़ीई की तरह अपने देश की खातिर और शायद वहुत से देशों की खातिर, जिनसे उसका दूर का भी सम्वन्ध न था, शहीद हो गई।

फिर मेरे सीने में वही धड़कती उवलती संध्या उभर आई जव चारों ओर वर्षा हो रही थी और हम दोनों एक क्षण के टापू में एक दूसरे का हाथ हाथ में लिए अकेले खड़े थे। ज़ीई जो एक स्थायी प्रेम की स्थायी जवानी के लिए मर मिटी। आज मेरे हाथ में उसका कटा हुआ सिर था। जीवन की वन्द कली की तरह जिसमें चारों ओर सुगन्धि ही सुगन्धि थी। मैं तुझसे क्या कहूं? मेरे प्रेम की अन्तिम सन्ध्या! किस प्रकार तेरे वालों को चूम कर कहूं—ले मेरे प्यार का अन्तिम नमस्कार, और सो जा! अपनी गहरी नज़रें मेरे देश के युवक-युवतियों को भी सौंप दे और फिर अपनी आंखें वन्द करले और सो जा। सो जा चीन देश की प्रेमिका, मेरे गुलाव! मेरे क्राइसंथम! मेरे यासमन! मेरे मोतिया के फूलों की रानी। आज की रात हम सव पर भारी है। हम पर इसलिए कि हम तुझे मृत्यु के मुंह से न वचा सके, उन पर इसलिए कि वह तेरा सिर काट सके। तेरा दिल, तेरी वुद्धि, तेरा अनुभव न काट सके। ऐसी काट किसी तलवार में नहीं है जो एशिया के प्रेम को काट सके। डाइक आदमखोर और अमरीकी आदमखोर और उनके अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और तुर्की गुलाम मिलकर एशिया के प्रेम को समाप्त नहीं कर सकते।

आज मैं इस चीज को समझ गया हूं कि तू मेरे पास फिर आएगी।

जिस प्रकार दो हज़ार वर्ष पूर्व मैं चलकर तेरे पास गया था, उसी प्रकार आज दो हज़ार वर्ष के बाद तू चलकर मेरे पास आएगी। और फिर तुझे और मुझे और संसार-भर की जनता को हमसे कोई अलग न कर सकेगा।

इस चीज़ को आज मैं समझ गया हूं, इसलिए जीई! आज मैं तुम्हारा इन्तज़ार करता हूं क्योंकि जब मैं जीई का इन्तज़ार करता हूं तो मैं प्रकाश के हिंडोले का इन्तज़ार करता हूं, तो मैं बहार का इन्तज़ार करता हूं।

: ६ :

जूते पहनूंगा

फज़ल ने कभी जूते नहीं पहने थे। इन अट्ठारह वर्षों तक उसका मन जूते पहनने को तरसता रहा। परन्तु जूते पहनने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ। उसके जीवन के प्रारम्भिक वर्ष एक मुस्लिम अनाथालय में व्यतीत हुए थे जहां के अध्यक्ष मुल्लाजी डंडे मार-मारकर उसको अधमरा कर दिया करते थे। वहां एक मैनेजर था जिसकी आंखें सदा लाल रहती थीं। उसकी कृपा से अनाथालय के बच्चे मरते तो न थे परन्तु उनकी भूख कभी शान्त नहीं होती थी। खाना उन्हें इतना कम मिलता था कि उनका मन हर समय खाने की वस्तुओं में ही पड़ा रहता था। किसी जगह बढ़िया भोजन को देखते ही उन पर मानो एक प्रकार का पागलपन-सा सवार हो जाता था। भूख से तंग आकर अनाथालय के लड़के कूड़े-करकट के ढेरों में से खाने की वस्तुएं ढूंढ़ा करते थे और सड़क पर पड़ी हुई गली-सड़ी वस्तुएं बड़े आनन्द के साथ खाया करते थे। रात के समय फज़ल स्वप्न में बढ़िया-बढ़िया खाद्य-पदार्थों के ढेर के ढेर देखता और वह शोर मचाता हुआ उठ बैठता। उस समय मुल्लाजी या मैनेजर साहब उसकी बुरी तरह खबर लेते। फज़ल के जीवन का एक-एक क्षण खाने के सम्बन्ध में सोचने में व्यतीत होता था। वह हर समय खाने के सम्बन्ध में ही सोचता, खाने ही देखता और खाने ही सूंघता। मुल्लाजी ने बहुत प्रयत्न किए कि वह किसी प्रकार नमाज़ के दो वाक्य ठीक ढंग

से याद करके बोल सके, परन्तु उस बेचारे के मस्तिष्क के तो छोटे से छोटे कोने में बस खाद्य-पदार्थ ही भरे हुए थे—वहां नमाज़ के वाक्यों के लिए कहां जगह थी ?

इस भूख के देव ने उसे अनाथालय से भी निकलवाकर छोड़ा। उसने अपनी भूख मिटाने के लिए चोरी भी शुरू कर दी थी। चोरी रुपये-पैसे की नहीं, अपितु, खाने की चोरी। दो-चार बार वह मुल्लाजी और मैनेजर साहब के बढ़िया-बढ़िया भोजनों पर हाथ साफ करता हुआ पकड़ा गया। उस समय उसकी वह ठुकाई हुई कि पांच-सात दिन तक तो वह अपनी चटाई पर से उठ भी न सका। परन्तु वह भोजन! आह! उस भोजन में भी कैसा आनन्द था! उसे खाकर उसकी आत्मा के कण-कण में मानो तृप्ति रच गई थी—मानो वर्षों की तपती हुई रेत पर मूसलाधार वर्षा हो गई हो। फज़ल के शरीर का जोड़-जोड़ पिटाई के कारण चस-चस कर रहा था, परन्तु वह उन भोजनों के स्वाद को याद करके अपने कष्ट को भूल-सा जाता था। वह स्वाद मानो उसकी चोटों पर मरहम का काम कर रहा था।

कुछ दिनों के पश्चात् फज़ल और भी गड़बड़ करने लगा। वह भीख के पैसों में से दो-चार पैसे रखकर उनकी भुनी हुई मूंगफली और गरम-गरम चबैना लेकर खाने लगा। उसकी देखा-देखी दो-तीन और अनाथ लड़के भी यह गड़बड़ करने लगे। थोड़े ही दिनों में मैनेजर को इस बात का पता चल गया। अब आप ही सोचिए कि कोई भी मैनेजर इस बात को कैसे सहन कर सकता है कि अनाथालय का धन इस प्रकार निकम्मे और व्यर्थ लड़कों के पेट में चला जाए। ऐसी दुष्टता को कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता था अतः पहले तो मैनेजर ने फज़ल और दूसरे बेईमान लड़कों को खूब पीटा और फिर उन्हें अनाथालय से बाहर निकाल दिया। इस पिटाई में फज़ल की एक आंख जाती रही।

फज़ल के साथी लड़के उसे उठाकर रेलवे पुल के नीचे ले गए और दो चार दिन तक उन्होंने उसकी बहुत सेवा की। अपनी समझ और

ज्ञान के अनुसार उन्होंने उसकी चिकित्सा भी की। फज़ल की आंख से खून वह रहा था। उसके साथियों ने कोयला पीसकर उसकी आंख में डाला। जब रुधिर का प्रवाह बन्द हुआ तो गोबर थोप दिया गया। गारा, मिट्टी, चूना—अर्थात् जिस किसी ने जो कुछ बता दिया वही दवा-दारू फज़ल की हुई। कुछ दिनों में रुधिर का बहना तो बन्द हो गया, परन्तु पीप का बहना प्रारम्भ हो गया। तब फज़ल को इतना तीव्र ज्वर चढ़ा कि उसे होश ही न रहा। उसने आंय-बांय बकना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर उसके साथी घबरा गए और अन्त में उसे उसी अवस्था में छोड़कर भाग गए। फज़ल दो-तीन दिन तक उसी अवस्था में वहां पड़ा रहा।

उसकी आयु उस समय सात वर्ष की थी!

रहमान ने उसे इसी चिन्ता-जनक अवस्था में पुल के नीचे पड़े पाया। उस समय दया उसके हृदय में समा गई और वह उसे उठा कर घर ले गया। यद्यपि उसे अपनी घरवाली की गालियां सुननी पड़ीं, परन्तु उसने उस समय उन गालियों की लेशमात्र भी परवाह न की और फज़ल को उसने बिस्तर पर लिटा दिया।

रहमान कोई धनवान व्यक्ति न था। वह आसफिया प्रेस में पचास-रुपये मासिक पर नौकर था। इन पचास रुपयों से उसे अपने घर का सारा खर्च चलाना पड़ता था। फिर कभी-कभी वह ताड़ी भी चख लिया करता था। ताड़ी पीकर वह बकारने लगता और किसी न किसी से लड़ पड़ता था। ऐसी अवस्था में वह दो-चार बार हवालात में भी रह आया था। और दो-चार बार वह प्रेस के मैनेजर से भी बुरी तरह पिटा।

रहमान ने अगले तीन महीनों में पूरे पौने बाईस रुपये फज़ल की चिकित्सा पर खर्च किये। इसका महत्त्व वे लोग नहीं समझ सकते जो एक पूरे हस्पताल को अपने दान से खड़ा कर सकते हैं। इस महा-त्याग के कारण जो कष्ट रहमान को उठाने पड़े इसका अनुमान बस रहमान को ही

हो सकता था । पहले महीने उसने ताड़ी नहीं पी, दूसरे महीने उसने घर के आवश्यक खर्च में कतर-ब्योंत की, तीसरे महीने उसके पास कुछ रुपया बचा था उन रुपयों से उसकी वीवी कानों की चांदी की वालियां वनवाने के लिए हठ करती रही, परन्तु रहमान ने वे रुपये फज़ल की नकली आंख वनवाने पर खर्च कर दिए । इन तीन महीनों में रहमान के जी में कई वार आया कि वह फज़ल को घर से वाहर निकाल दे, परन्तु वह फिर यह सोच कर रुक जाता कि अब यह अच्छा हो रहा है, इसे मैं लाया हूं तो अव रख ही लूं । फिर मन में कहता कि जव यह विल्कुल ही ठीक हो जाएगा तव इस सूअर को वाहर छोड़ आऊंगा ।

परन्तु जव फज़ल विल्कुल ठीक हो गया तो रहमान ने देखा कि उसकी नस-नस में भूख समाई है । फज़ल वेवस होकर किन भूखी आंखों से खाने की ओर देखता था ! यह देखकर रहमान का दिल भर आया और उसने सहसा दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह उसे अपने घर में ही रखेगा, और अपना वेटा वनाकर रखेगा । परमात्मा की कृपा से उसके घर में संतान की कमी न थी, सात वच्चे मौजूद थे और आठवां आने वाला था, परन्तु फिर भी उसने फज़ल को वेटा वनाकर घर में रखने का पक्का निश्चय कर लिया ।

उसने अपनी वीवी से कहा, 'देख, जितना खाना तू वनाए, सारे का सारा पहले फज़ल के सामने रख दिया कर ।'

वीवी ने कहा, 'पागल हो गए हो क्या ?'

रहमान ने अनुनय से कहा, 'तू कुछ दिन जिस तरह मैं कहता हूं उस तरह करके तो देख ।'

वीवी मान गई । फज़लू ने कुछ दिनों तक इतना खाया, इतना खाया कि उसकी आंखें वाहर निकलने को हो गईं । परन्तु प्रतिदिन वह पिछले दिन की अपेक्षा कम खाता । धीरे-धीरे उसकी यह असीम भूख शान्त होने लगी । कुछ दिनों के वाद वह स्वयं नियमित मात्रा में भोजन करने लगा । यह देखकर रहमान वहुत प्रसन्न हुआ । फिर रहमान ने उसे पु

स्कूल में भर्ती करा दिया। परन्तु एक तो मुल्ला जी का भय उसके मन पर भूत की भांति छाया हुआ था और दूसरे कई वर्ष की लगातार भूख ने उसके मस्तिष्क को इतना निकम्मा कर दिया था कि आठ वर्ष के कड़े परिश्रम के बाद भी वह चौथी कक्षा से आगे नहीं निकल सका। आखिर निराश होकर रहमान ने उसे स्कूल से उठा लिया। स्कूल से छुटकारा पाकर फज़ल बहुत प्रसन्न हुआ। दो-चार दिन के बाद वह घर के काम-काज में जुट गया। अब वह घर के बरतन मांजता, बाज़ार से छोटा-मोटा सौदा लाता और गली-मुहल्ले के लड़कों से लड़ाई-झगड़ा करता, कंचे-गोली खेलता और रहमान के डांटने पर भी भुनी हुई मूंगफली और सिंघाड़े बेचने के लिए शहर में निकल जाता। परन्तु वह हिसाब में बहुत कच्चा था और वैसे भी मूढ़ था। सिंघाड़े एक आने छटांक बिकते थे, परन्तु वह कभी दो पैसे के छटांक तोल देता और कभी छः पैसे के छटांक; कभी दो आने की मूंगफली देकर और ग्राहक से चवन्नी लेकर उसे तीन आने वापस कर देता। कभी ग्राहक से पैसे लेकर भूल जाता और जब पैसों के लिए ग्राहक को तंग करता तो झिड़कियां खाता और कभी-कभी चपत भी खाने पड़ते। पुलिस वाले फेरी वालों को तंग करते ही रहते हैं। उन्हें दूर से आता देखकर और फेरी वाले इधर-उधर दुबक जाते परन्तु फज़ल उनके हत्थे चढ़ जाता। वह कई बार हवालात में गया और उसकी टोकरी फैंकी गई। एक बार फज़लू को पड़ौस के आदमी ने उसकी 'दुकानदारी' की किसी साधारण सी गड़बड़ पर कुछ अधिक पीट दिया। जब शाम को रहमान घर आया और उसे उस घटना का ज्ञान हुआ तो उससे न रहा गया और उसने जाकर उस पड़ौसी की खूब ठुकाई। की मुहल्ले वाले इकट्ठे हो गए, हुल्लड़बाज़ी देखकर पुलिस भी आ गई, रहमान को गिरफ्तार कर लिया गया और अदालत ने अगले दिन उस पर १५ रुपये जुर्माना या एक सप्ताह की कैद की सज़ा का हुक्म सुना दिया। बीवी ने अपने कानों की बालियां और हाथों के छल्ले बेचे, तब जुर्माने के १५ रुपये देकर रहमान की रिहाई हुई।

फज़ल दो वर्ष और इसी प्रकार आवारा घूमता रहा। फिर रहमान के अनुनय-विनय पर आसफिया प्रेस के मैनेजर ने फज़ल को प्रेस में नौकर रख लिया। फज़ल की आयु इस समय १८ वर्ष की हो गई थी। बल और शक्ति उसकी रगों और पट्ठों में मानो किसी ने कूट-कूटकर भर दिए थे। उसके बेडौल से, परन्तु गठे हुए, बलिष्ठ हाथ-पांव कोई कठिन काम करने के लिए, किसी भारी वस्तु को उठाकर फेंकने के लिए बेचैन से रहते थे। यह शक्ति, यह बल और काम करने के लिए यह बेचैनी अब १२ रुपये मासिक पर आसफिया प्रेस की भेंट हो गए थे। फज़ल के लिए १२ रुपये एक अनहोनी सी बात थी। जब वह नौकर हुआ तो बारह रुपयों के विचार ने उस पर नशे की सी हालत पैदा कर दी। काम करते-करते भी जब उसे बारह रुपयों का ख्याल आ जाता तो उसके मन में फुरेरी-सी आ जाती। सारे शरीर में सनसनी-सी दौड़ जाती। बारह रुपये ! पूरे बारह !! जब वह छुट्टी होने पर बाहर निकलता तो उसे वे बारह रुपये वातावरण में चारों ओर फैले हुए दिखाई देते। अब वह एक कमीज़ खरीद सकता था, एक पाजामा, एक नेकर। वह अंग्रेज़ी फैशन के बाल कटवाएगा और और, हां, अब वह बाज़ार से मिठाई भी खरीद सकता है। जब उसे वेतन मिलेगा तो वह ढेर-सारे संतरे खरीदेगा और किसी रैस्टोरैंट में जाकर कम से कम पांच प्लेट बिरयानी की खाएगा। यह सोचते-सोचते वह अपने काम को बड़े उत्साह के साथ करने लगता और काम करते-करते गुनगुनाने लगता।

एक दिन फज़ल की दृष्टि सहसा मैनेजर के जूते पर पड़ी। बड़ा सुन्दर जूता था वह—ब्राउन रंग का विलायती जूता और रबड़ का बहुत मोटा तला लगा हुआ। जूत इतना चमकदार था कि आदमी उसमें अपना मुंह भी देख सकता था। फज़ल इस जूते को देखकर स्तम्भित रह गया। न जाने वह कितनी देर तक जूते को देखता रहा। उसका मन अपने काम से हटकर उस जूते में केन्द्रित हो गया। जब मैनेजर ने उसे डांटा तब उसे होश आया। उसने अपना मन अपने काम में फिर लगाना

चाहा, परन्तु उसकी आंखें वरवस उन जूतों की ओर वार-वार खिच जातीं और वह एकटक उन्हें घूरता रह जाता। अब प्रतिक्षण उसके मानसिक नेत्रों के सामने वह जूता रहने लगा। वह सोचने लगा, इन्हें पहन कर आदमी वहिश्त में पहुंच जाता होगा ! उसका मन करने लगा कि वह उन जूतों को उठाकर अपने गालों से लगा ले। फिर उसने अपने मोटे-मोटे, भद्दे, वेडौल पांवों की ओर देखा, जो नंगे चलने से चपटे हो गए थे। उसके मन में यह विचार सहसा अत्यन्त वलपूर्वक उठा कि उसने आज तक जूता नहीं पहना था। उसे आज तक जूता पहनने को क्यों नहीं मिला ? अब वह जूता पहनेगा, अवश्य पहनेगा। ब्राउन रंग का विलायती जूता। मोटे रवड़ के तले वाला। शीशे जैसा चमकदार।

मन में यह दृढ़ निश्चय करके उसने रहमान से कहा, 'चाचा, मुझे वेतन दिलवा दे।'

रहमान ने चकित होकर कहा, 'अरे, अभी तुझे काम करते हुए दस दिन तो हुए भी नहीं, और वेतन मांगने लगा ! कैसा वेतन, पागल ?'

'चाचा, मेरा दस दिन का वेतन कितना वनता है ?'

'चार रुपये।'

'तो चार रुपये ही दिला दे मुझे, आज ही दिला दे।'

'क्या करेगा तू चार रुपयों का ?'

यह प्रश्न सुनकर फज़ल चुप हो गया, और किसी अज्ञात भाव के कारण उसका चेहरा लाल होता चला गया। फिर उसने साहस वटोर कर, परन्तु रुकते-रुकते कहा, 'चाचा मैं···जूता पहनूंगा।'

रहमान फज़ल की वात सुनकर हंसने लगा। वह इतना हंसा कि उसकी आंखों में आंसू आ गए। फिर वह फजल को मैनेजर के पास ले गया और उसे सारी कहानी सुनाई। मैनेजर भी वात सुनकर इतना हंसा कि उसकी पसलियां दुखने लगीं। परन्तु अन्त में फज़ल वहां से चार रुपये लेकर ही टला।

फ़ज़ल चार रुपयों को हाथ में दवाए वाज़ार में चला जा रहा था।

वह जूतों की दुकानों पर बार-बार रुकता और शो-केसों में अपना वही चहेता जूता देखकर आश्चर्य से उसे तकने लगता। फिर जब दाम पूछता तो उत्तर मिलता, चालीस रुपये। वैसा जूता उसे कहीं भी चालीस रुपयों से कम में नहीं मिला और उसके पास केवल चार रुपये थे। अब कैसे होगा? उसने सोचा था कि इस महीने वह जूता खरीदेगा, अगले महीने एक कमीज़ और नेकर और तीसरे महीने एक टोपी, चौथे महीने ……परन्तु अभी तो वह जूता भी नहीं खरीद सकता। वह क्या करे, क्या न करे!

कई दुकानों के चक्कर काटकर उसने दुखी होकर अन्त में सोचा, चलो कोई और जूता ही खरीद लूं, कोई सस्ता जूता।

उसने अन्य जूतों के दाम पूछने आरम्भ किए। कोई जूता पच्चीस रुपये का था तो कोई बीस का। फिर अट्ठारह रुपयों के, पन्द्रह रुपयों के, ग्यारह रुपयों के, नौ रुपये आठ आने के…परन्तु चार रुपयों का जूता कहीं न मिला।

दुःखी और निराश होकर फज़ल घर की ओर लौटा। रास्ते में, चोर बाज़ार के नुक्कड़ पर, फुटपाथ से ज़रा हटकर उसने बहुत-से जूते रखे हुए देखे। ज़रा ध्यान से देखने पर उसने उन जूतों के बीच में अपने उसी प्रिय डिज़ाइन के जूते को देखा। वैसा ही ब्राउन जूता, मोटे रबड़ का तला……बस यह कुछ पुराना था, रबर के तले कुछ घिसे हुए थे और उनमें मेखें ठुकी हुई थीं। तस्मे भी नहीं थे। फिर भी जूता वैसा ही था जैसा मैनेजर का।

फज़ल ने कांपते हुए स्वर में जूते के दाम पूछे।

दुकानदार ने कहा, 'दस रुपये।'

'मेरे पास तो केवल चार रुपये हैं', फज़ल ने इस बार और भी अधिक कांपती हुई आवाज़ में कहा।

दुकानदार ने कहा, 'लाओ, चार ही सही। तुम भी क्या याद करोगे कि किसी सेठ का जूता पहना था। उठालो इसे।'

फ़ज़ल को पहले तो विश्वास न हुआ कि दुकानदार सचमुच उसे चार रुपयों में वह जूता दे रहा है परन्तु जब वास्तव में दुकानदार ने जूता उठाकर उसके हवाले कर दिया तो फज़ल के आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही। वह जूता पांव में फंसाकर वहां से घर की ओर भागा। उसे डर था कि कहीं कोई उससे वह जूता छीन न ले। फज़ल को ऐसा लगा मानो वह किसी मखमल के फर्श पर घूम रहा है। आज उसने जूता लिया है फिर वह कमीज़ लेगा, फिर टोपी और इसी प्रकार, एक-एक कदम बढ़ाता हुआ वह आगे बढ़ता जाएगा। अब वह प्रेस में जी लगाकर काम करेगा। मैनेजर साहब की आज्ञाओं का हृदय से पालन करेगा। आज जीवन में पहली बार उसके मन में परमात्मा का सच्चे हृदय से धन्यवाद करने का विचार उत्पन्न हुआ। यह सोचकर, डरते-डरते, उसने एक निकटवर्ती मस्जिद में प्रवेश किया।

जब वह थोड़ी देर के पश्चात् मस्जिद से बाहर निकला तो देखा कि जूते गायब थे। कलेजा सन्न हो गया। गिरता-पड़ता, जैसे-तैसे, रोता हुआ घर पहुंचा। रात भर वह जूते के लिए रोता रहा। मानो उसकी प्रिया उससे वियुक्त हो गई हो। मानो उसकी मां मर गई हो। वह बहुत रोया, उस पुराने जूते के लिए, मानो वह जूता उसकी सारी आकांक्षाओं का केन्द्र था और उसके चले जाने से उसकी सारी आशाएं और अभिलाषाएं मिट्टी में मिल गई हों।

रहमान ने उस दिन फिर ताड़ी पी रखी थी। उसने फ़ज़ल को बहुत पीटा। 'सूअर, तू विलायती जूता पहनना चाहता है! तुझपर खुदा की मार! मालिक तो मालिक रहेगा और मजूर मजूर ही रहेगा। वह मालिक नहीं बन सकता, वह नये कपड़े नहीं सिला सकता, वह टोपी नहीं पहन सकता......समझता है कि नहीं, हराम......।' यह कहकर उसने फज़ल को दो-चार चांटे और रसीद किए और फिर बकने लगा, 'सुन बे, कभी मैं भी तेरी तरह सोचता था कि एक के बाद दूसरा कदम, और फिर तीसरा और फिर चौथा। मैं भी सोचता था कि आज कमीज़ लेंगे,

और कल नेकर और परसों टोपी। परन्तु यह सब बकवास है। एक कदम के बाद दूसरा और फिर पहला। सुन रहा है तू? मालिक एक क्षण में उत्साहित करता है और दूसरे क्षण में सब कुछ छीन लेता है। सब कुछ······सब कुछ······।' यह कहकर रहमान ने दो चांटे और रसीद किए। और फिर कहने लगा, 'एक-एक कदम बढ़ने से कुछ नहीं होगा। विलायती जूते का विचार मन से दूर कर दे। नंगा, भूखा, प्यासा रह, परन्तु एक ही छलांग में मंजिल को पाले।··· साले··· ।'

रहमान बोलता जा रहा था और लगातार फजल को पीटता जा रहा था। परन्तु अब फजल पर इस पिटाई का कोई प्रभाव ही न पड़ रहा था। उसके मस्तिष्क पर से मानो कोई पर्दा सा उठ गया था, जैसे सहसा कुहरा साफ हो गया हो। अब हर बात उसकी समझ में आ रही थी—स्पष्ट, संदेह-रहित, जंची-तुली····।

० ० ०